श्रीवीतरागाय नमः

दौलत-जैनपदसंग्रह ।

१

मंगलाचरण स्तुति ।

दोहा ।

सकल-ज्ञेय-ज्ञायक तदपि, निजानंदरसलीन ।
सो जिनेन्द्र जयवंत नित, अरिरजरहस[1] विहीन ॥ १ ॥

पद्धरिछन्द ।

जय वीतराग विज्ञानपूर । जय मोहतिमिरको हरन सूर ॥
जय ज्ञान अनंतानंत धार । दृगसुख वीरज[2]-मंडित अपार
॥२॥ जय परम शांतिमुद्रा समेत । भविजनको निज-अनु-
भूतिहेत ॥ भवि भागन[3]-वश जोगे[4] वशाय । तुम धुनि ह्वै सुनि
विभ्रम नसाय ॥३॥ तुम गुण चिंतत निजपर-विवेक । प्रगटै,

---

१ चार घातिया कर्मोंसे रहित । २ अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, अनन्त वीर्य । ३ भव्यजनोंके भाग्यसे । ४ मनवचनकायके योगोंके कारण ।

विघटै आपद अनेक ॥ तुम जगभूपन दूपनवियुक्त । सव महिमायुक्त विकल्पमुक्त ॥ ४ ॥ अविरुद्ध शुद्ध चेतनस्वरूप । परमात्म परमपावन अनूप ॥ शुभ अशुभ-विभाव अभाव कीन । स्वाभाविकपरनतिमय अछीन ॥ ५ ॥ अष्टादशदोषविमुक्त धीर । सुचतुष्टयमय राजत गभीर ॥ मुनि गणधरादि सेवत महंत । नवकेवललब्धि-रमा धरंत ॥६॥ तुम शासन सेय अमेय[1] जीव । शिव गये जाहिं जे हैं सदीव ॥ भवसागरमें दुख खार-वारि । तारनको और न आप टारि ॥ ७ ॥ यह लखि निजदुखगद[2]हरणकाज । तुम ही निमित्तकारण इलाज । जाने, तातैं मैं शरन आय । उचरों निजदुख जो चिर लहाय ॥८॥ मैं भ्रम्यो अपनपो विसरि आप । अपनाये विधिफल[3] पुण्य पाप ॥ निजको परको करता पिछान । परमें अनिष्टता इष्ट ठान ॥ ९ ॥ आकुलित भयो अज्ञान धारि । ज्यों मृग मृगतृष्णा जान वारि[4] ॥ तन परनतिमें आपो चितार ॥ कवहूं न अनुभयो स्वपद सार ॥ १० ॥ तुमको विन जाने जो कलेश । पाये सो तुम जानत जिनेश ॥ पशु-नारक-नर सुरगति-मझार । भव धर धर मर्यो अनंत वार ॥ ११ ॥ अव काललब्धिवलतैं दयाल । तुम दर्शन पाय भयो खुशाल । मन शांत भयो मिटि सकल द्वंद । चाख्यो स्वातमरस दुखनिकंद ॥ १२ ॥ तातैं अव ऐसी करहु नाथ । विछुरै न कभी तुम चरण साथ ॥ तुम गुण-गणको नहिं छेव[5] देव ।

---

१ अपरिमाण । २ रोग । ३ कर्मफल । ४ पानी । ५ पार

जगतारनको तुम विरद एव ॥ १३ ॥ आतमके अहित विषय-कषाय। इनमें मेरी परणति न जाय ॥ मैं रहौं आपमें आप लीन। सो करो होंहुं ज्यों निजाधीन ॥ १४ ॥ मेरे न चाह कछु और ईश। रत्नत्रयनिधि दीजे मुनीश ॥ मुझ कारजके कारण सु आप। शिव करहु हरहु मम मोह-ताप ॥ १५ ॥ शशि शांतिकरन तपहरन-हेत। स्वयमेव तथा तुम कुशल देत ॥ पीवत पियूष ज्यों रोग जाय। त्यों तुम अनुभवतैं भव नसाय ॥ १६ ॥ त्रिभुवन तिहुंकालमझार कोय। नहिं तुम विन निजसुखदाय होय ॥ मो उर यह निश्चय भयो आज। दुखजलधि-उतारन तुम जिहाज ॥ १७ ॥

दोहा

तुम गुण-गण-मणि गणपती[1], गनत न पावहिं पार।
'दौल' स्वल्पमति किमि कहै, नमूं त्रियोग[2] सम्हार ॥ १८ ॥

२

देखो जी आदीश्वर स्वामी, कैसा ध्यान लगाया है। कर ऊपरकर सुभग विराजे, आसन थिर ठहराया है ॥ देखो जी० ॥ टेक ॥ जगतविभूति भूतिसम[3] तजिकर, निजानन्द-पद ध्याया है। सुरभित[4] श्वासा, आशावासा[5] नासादृष्टि सुहाया

---

१ गणधरदेव। २ मन वचन काय। ३ भस्म जैसी। ४ सुगंधित। ५ दिशारूपी वस्त्र = दिगंबरता।

है ॥ देखो जी० ॥ १ ॥ कंचन वरन चलै मन रंच न, सु-[1]रगिर ज्यों थिर थाया है । जास पास अहि मोर मृगी हैरि,[2] जातिविरोध नसाया है ॥ देखो जी० ॥ २ ॥ शुधउपयोग हुताशनमें जिन, वसुविधि समिधैं[3] जळाया है । श्यामलि अलिकावलि शिर सोहै, मानों धुंआ उड़ाया है ॥ देखो जी० ॥ ३ ॥ जीवन मरन अलाभ लाभ जिन; तृन मनिको सम भाया है। सुर नरनाग नमहिं पद जाके, दौल तास जस गाया है ॥ देखो जी० ॥ ४ ॥

३

जिनवर-आनन-भान निहारत, भ्रमतमघान नसाया है ॥ जिन० ॥ टेक ॥ वचन-किरन-प्रसरनतैं भविजन, मनसरोज सरसाया है । भवदुखकारन सुखविसतारन, कुपथ सुपथ दरसाया है ॥ जिन० ॥ १ ॥ विनसाई, कैंज[4] जलसरसाई निशिचर समेर[5] दुराया है । तस्कर[6] प्रबल कषाय पलाये, जिन धनबोध चुराया है ॥ जिन० ॥ २ ॥ लखियत उँडु[7] न कुभाव कहूं अब, मोह उलूक लजाया है । हंस[8] कोकको[9] शोक नश्यो निज,- परनतिचकवी पाया है ॥ जिन० ॥ ३ ॥ कर्मबंध-[10]

---

१ सुमेरु पर्वत । २ सिंह । ३ होम करनेकी लकड़ियां । ४ काई द्वितीय पक्षमें-अज्ञानरूपी काई । ५ स्मर अर्थात्—कामदेव । ६ चोर ७ तारे । ८ आत्मा । ९ चकवा । १० कर्मबंधरूपी कमलोंके कोष बंधे हुए थे, उनसे ।

रुजकोष वंधे चिर, भवि-अलि मुंचन पाया है । दौल उजारै निजातम अनुभव, उर जग अन्तर छाया है ॥ जिन० ॥ ४ ।

४

पारस जिन चरन निरख, हरख यों लहायो, चितवत चन्दा चकोर ज्यों प्रमोद पायो ॥ टेक ॥ ज्यों सुन घनघोर शोर, मोरहर्षको न ओर, रंक निधिसमाज राज पाय मुदित थायो ॥ पारस० ॥ ज्यों जन चिरक्षुधित होय, भोजन लखि सुखित होय, भेषज गदहरन पाय, सरुज सुहरखायो ॥ पारस० ॥ २ ॥ वासर भयो धन्य आज, दुरित दूर परे भाज, शांतदशा देख महा, मोहतम पलायो ॥ पारस० ॥ ३ ॥ जाके गुन जानन जिम, भानन भवकानन इम, जान दौल शरन आय, शिवसुख ललचायो ॥ पारस० ॥ ४ ॥

५

वंदों अदभुत चन्द्र वीर जिन, भवि-चकोरचितहारी ॥ वंदों० ॥ टेक ॥ सिद्धारथनृपकुलनभ-मंडन, खंडन भ्रमतम भारी । परमानंद-जलधिविस्तारन, पाप ताप छयकारी ॥ वंदों० ॥ १ ॥ उदित निरंतर त्रिभुवन-

---

१ छोर । २ बहुत दिनोंका भूखा । ३ दवाई । ४ रोगी । ५ महावीर स्वामी ।

अन्तर, कीरति किरन पसारी । दोष[1]-मलंक[2]-कलंक अटंकित, मोहराहु निरवारी ॥ वंदों० ॥ २ ॥ कर्मावरन[3]-पयोद-अरोधित, बोधित शिवमगचारी । गणधरादि मुनि उँ[4]-डुगन सेवत, नित पूनमतिथि धारी ॥ वन्दों० ॥ ३ ॥ अखिल अलोकाकाश–उलंघन, जासु ज्ञान उजियारी । दौलत मनसा[5]-कुमुदनि-मोदन, जयो चरम[6]–जगतारी ॥ वन्दों० ॥ ४ ॥

६

निरखत जिनचन्द्र–वदन, स्वपरसुरुचि आई । निरखत जि० ॥ टेक ॥ प्रगटी निज आनकी, पिछान ज्ञान भानकी, कला उदोत होत काम, जामिनी[7] पलाई । निरखत० ॥ १ ॥ साश्वत आनंन्द स्वाद, पायो विनस्यो विषाद, आनमें अनिष्ट इष्ट, कल्पना नसाई । निरखत० ॥ २ ॥ साधी निज साधकी, समाधि मोहव्याधिकी, उपाधिको विराधिकैं, अराधना सुहाई । निरखत० ॥ ३ ॥ घन दिन छिन आज सुगुनि, चिंतें जिनराज अबै, सुधरे सब काज दौल, अचल सिद्धि पाई । निरखत० ॥ ४ ॥

---

१ दोषा रात्रि । २ पापरूपी कलंक । ३ कर्मोंके आवरणरूपी बादलोंसे जो ढकता नहीं है । ४ तारागण । ५ मनरूपी कुमोदनीको हर्षित करनेवाला । ६ अंतिम तीर्थंकर । ७ रात्रि ।

७

जिया तुम चालो अपने देश, शिवपुर थारो शुभ-थान। जिया० ॥ टेक ॥ लख चौरासीमें बहु भटके, लह्यौ न सुखरो लेश ॥ जिया० ॥ १ ॥ मिथ्यारूप धरे बहुतेरे, भटके बहुत विदेश ॥ जिया० ॥ २॥ विषयादिक बहुत दुख पाये, भुगते बहुत कलेश ॥ जिया० ॥ ३ ॥ भयो तिरजंच नारकी नर सुर, करि करि नाना भेष ॥ जिया० ॥ ४ ॥ दौलत राम तोड जगनाता, सुनो सुगुरु उपदेश ॥ जिया० ॥ ५ ॥

८

जय जय जग-भरम-तिमर, हरन जिन धुनी ॥ टेक ॥ या बिन समुझे अजौं न, सौंज निज मुनी । यह लखि हम निजपर अवि,—वेकता लुनी ॥ जय जय० ॥ १ ॥ जाको गनराज अंग, पूर्वमय चुनी । सोई कही है कुन्द-कुन्द, प्रमुख बहु मुनी ॥ जय जय० ॥ २ ॥ जे चर जड भये पीय, मोह बारुनी । तत्त्व पाय चेते जिन, थिर सुचित सुनी ॥ जय जय० ॥ ३ ॥ कर्ममल पखारने-हि, विमल सुरधुनी । तज विलंब अंब करो, दौल उर पुनी ॥ जय जय० ॥ ४ ॥

९

अब मोहि जानि परी, भवोदधि तारनको है जैन ॥

॥ टेक ॥ मोह तिमिरतें सदा कालके, छाय रहे मेरे नैन । ताके नाशन हेत लियो, मैं अंजन जैन सु ऐन ॥ अब० ॥ १ ॥ मिथ्यामती भेषको लेकर, भाषत हैं जो बैन । सो वे बैन असार लखे मैं, ज्यों पानीके फैन ॥ अब मोहि० ॥ २ ॥ मिथ्यामती वेल जग फैली, सो दुख फलकी दैन ॥ सतगुरु भक्तिकुठार हाथ लै, छेद लियौ अति चैन ॥ अब० ॥ ३ ॥ जा विन जीव सदैव कालतैं विधि वश सुखन लहै न । अशरन-शरन अभय दौलत अव, भजो रैन दिन जैन ॥ अब० ॥ ४ ॥

१०

सुन जिन बैन, श्रवन सुख पायौ ॥ टेक ॥ नस्यौ तत्त्व दुर अभिनिवेश तम, स्याद उजास कहायौ । चिर विसरयौ लह्यौ आतम रैन (?) ॥ श्रवन० ॥ १ ॥ दह्यौ अनादि असंजम दवतैं, लहि व्रत सुधा सिरायौ । धीर धरी मन जीतन मन (?) ॥ श्रवन सुख० ॥ २ ॥ भरो विभाव अभाव सकल अब, सकल रूप चित लायौ । दास लह्यौ अब अविचल जैन । श्रवन सुख० ॥ ३ ॥

११

बामा घर बजत बधाई, चलि देखि री माई ॥ टेक ॥ सुगुनरास जग-आस भरन तिन, जने पार्श्व जिनराई । श्री ह्री धृति कीरति बुद्धि लछमी, हर्ष अंग न माई ॥ चलि० ॥ १ ॥ बरन बरन मनि चूर सची सब, पूरत

चौक सुहाई । हाहा हूहू नारद तुम्बर, गावत श्रुति सुखदाई ॥ चलि० ॥ २ ॥ तांडव नृत्य नटत हरिनट तिन, नख नख सुरीं नचाई। किन्नर कर धर वीन बजावत दृगमनहर छवि छाई ॥ चलि० ॥ ३ ॥ दौल तासु प्रभुकी महिमा सुर, गुरु पै कहिय न जाई । जाके जन्म समय नरकनमें, नारकि साता पाई ॥ चलि० ॥ ४ ॥

१२

जय श्री ऋषभ जिनेन्द्रा । नाश तौ करो स्वामी मेरे दुखदंदा ॥ मातु मरुदेवी प्यारे, पिता नाभिके दुलारे, वंश तो इक्ष्वाक जैसे नभबीच चंदा ॥ जय श्री० ॥ १ ॥ कनक वरन तन; मोहत भविक जन, रवि शशि कोटि लाजैं, लाजै मकरन्दा ॥ जय श्री० ॥ २ ॥ दोष तौ अठारा नासे, गुन छियालीस भासे, अष्ट-कर्म काट स्वामी, भये निरफंदा ॥ जय श्री० ॥ ३ ॥ चार ज्ञानधारी गनी, पार नाहिं पावै मुनी, दौलत नमत सुख चाहत अमंदा ॥ जय श्री० ॥ ४ ॥

१३

मत कीज्यौ जी यारी, ये भोग भुजग सम जानके, मत कीज्यौ० ॥ टेक ॥ भुजग डसत इकबार नसत है, ये अनंत मृतुकारी । तिसना तृषा बढ़ै इन सेयें, ज्यौं पीये जल

१ सर्प । २ मृत्युके करनेवाले ।

खारी ॥ मत कीज्यौ जी० ॥ १ ॥ रोग वियोग शोक वनको धंन[1], समता-लताकुठारी[2] । केहरि[3] करी[4] अरी[5] न देत ज्यौं, त्यौं ये दें[6] दुखभारी ॥ मत कीज्यौ० ॥ २ ॥ इनमें रचे देव तरु थाये, पाये श्वभ्र मुरारी[7] । जे विरचे[8] ते सुरपति अरचे, परचे सुख अधिकारी ॥ मत कीज्यौ० ॥ ३ ॥ पराधीन छिनमाहिं छीन है, पापबंधकरतारी ॥ इन्हें गिनैं सुख आकमाहिं तिन, आमतनी बुधि धारी ॥ मत कीज्यौ० ॥ ४ ॥ मीन मतंग[9] पतंग भृंग[10] मृग, इन वश भये दुखारी ॥ सेवत ज्यौं किंपाक[11] ललित, परिपाक समय दुखकारी ॥ मत कीज्यौं जी० ॥ ५ ॥ सुरपति नरपति खगपति-हूकी भोग न आस निवारी, दौल त्याग अब भज विराग सुख, ज्यौं पावै शिवनारी ॥ मत कीज्यौ जी यारी० ॥ ६ ॥

१४

सुधि लीज्यौ जी म्हारी, मोहि भवदुखदुखिया जानके, सुधि० ॥ टेक ॥ तीनलोकस्वामी नामी तुम त्रिभुवनके दुखहारी । गनधरादि तुम शरन लई लख लीनी सरन तिहारी ॥ सुध ली० ॥ १ ॥ जो विधि अरी करी हमरी

---

१ मेघ । २ समतारूपी बेलके काटनेके लिये कुल्हाडी । ३ सिंह । ४ हाथी । ५ दुश्मन । ६ नरक । ७ नारायण । ८ वैरागी हुए । ९ हाथी । १० भ्रमर । ११ इन्द्रायणका फल ।

गति, सो तुम जानत सारी। याद किये दुख होत हिंं ज्यों, लागत कोट कटारी॥ सुध लीज्यौ०॥ २॥ लब्धि अपर्यापतनिगोदमें एक उसासमंझारी। जनममरन नवदु-[1]गुन विथाकी कथा न जात उचारी॥ सुध लीज्यौ०॥ ॥ ३॥ भू[2] जल ज्वलन[3] पवन प्रतेक तरु, विकलत्रयतन-धारी। पंचेंद्री पशु नारक नर सुर, त्रिपति भरी भयकारी॥ सुध लीज्यौ०॥ ४॥ मोह महारिपु नेक न सुखमय, होन दई सुधि थारी। सो दुठ मंद भयौ भागनतैं, पाये तुम जगतारी॥ सुध लीज्यौ०॥ ५॥ यद्यपि विरागि तदपि तुम शिवमग, सहज प्रगटकरतारी। ज्यौं रविकिरन सहजमगदर्शक यह निमित्त अनिवारी॥ सुध ली०॥ ६॥ नाग छाग गज बाघ भील दुठ, तारे अधम उधारी। सीस नवाय पुकारत अबके, दौल अधमकी बारी। सुध ली०॥ ७॥

१५

मत राचो धी[4]धारी, भव रंभथंभसम[5] जानके। मत राचो०॥ टेक॥ इन्द्रजालको ख्याल मोह ठग, विभ्रमपास पसारी। चहुंगति विपतिमयी जामें जन, भ्रमत भरत दुख

---

१ अठारहबारकी। २ पृथ्वीकाय। ३ अग्निकाय। ४ हे बुद्धिमानों। ५ केलेके खंभे समान।

भारी ॥ मत० ॥ १ ॥ राणा मा, मा वामा, सुत पितु, सुता भसा, अवतारी । को अचंभ जहां आप आपके, पुत्र दशा विसतारी ॥ मत राचो० ॥ २ ॥ घोर नरक दुख ओर न छोर न, लेश न सुख विस्तारी । सुरनर प्रचुर विषयजुर जारे, को सुखिया संसारी ॥ मत राचो० ॥ ३ ॥ मंडल[3] है आखंडल[4] छिनमें, नृप कृमि सधन भिखारी । जा सुत विरह मरी है वाघिनि, ता सुत देह विदारी ॥ मत राचो० ॥ ॥ ४ ॥ शिशु न हिताहितज्ञान तरुण उर, मदनदहन[6] पर-जारी । वृद्ध भये विकलांगी थाये, कौन दशा सुखकारी ॥ मत राचो० ॥ ५ ॥ यौं असार लख छार भव्य झट, भये मोखमगचारी । यातैं होउ उदास 'दौल' अब, भज जिन-पति जगतारी ॥ मत० ॥ ६ ॥

१६

नित पीज्यौ धीधारी, जिनवानि सुधासम जानके, नित पी० ॥ टेक ॥ वीरमुखारविंदतैं प्रगटी, जन्मजरागद टारी । गौतमादिगुरु-उरघट व्यापी परम सुरुचि करतारी ॥ नित० ॥ १ ॥ सलिल[11] समान कलिलमलगंजन[12] बुधमनरंज-नहारी । भंजन विभ्रमधूलि प्रभंजन, मिथ्याजलदनिवारी

१ स्त्री । २ बहिन । ३ कुत्ता । ४ देव । ५ लट । ६ कामाग्नि । ७ जैनशास्त्रोंको । ८ अमृत समान । ९ महावीर स्वामीके मुखकमलसे । १० रोग । ११ जलके समान । १२ पापरूपी मैलको नष्ट करनेवाली ।

नित पी० ॥ २ ॥ कल्यानकतरु उपवनधरिनी, तरनी[2] भवजलतारी । बंधविदारन[3] पैनी छैनी[4], मुक्तिनसैनी सारी ॥ नित पी० ॥ ३ ॥ स्वपरस्वरूप प्रकाशनको यह, भानु-कला अविकारी । मुनिमन-कुमुदिनि-मोदन-शशिभा[5], शम-सुखसुमनसुवारी[6] ॥ नि० ॥४॥ जाको सेवत वेवत[7] निजपद, नशत अविद्या सारी । तीनलोकपति[8] पूजत जाको, जान त्रिजगहितकारी ॥ नित० ॥ ५ ॥ कोटि जीभसौं महिमा जाकी, कहि न सके पविधारा[9] । दौल अल्पमति केम कहै यह, अधम उधारनहारी ॥ नित० ॥ ६ ॥

१७

मत कीज्यौ जी यारी, घिनगेह देह जड जान के, मत की० ॥ टेक ॥ मात-तात-रज वीरजसौं यह, उपजी मलफुलवारी । अस्थिमाल[11] पलनसाजालकी, लाल लाल जलक्यारी ॥ मत की० ॥ १ ॥ कर्मकुरंगथलीपुतली[12] यह, मूत्रपुरीषभंडारी[13] । चर्ममंडी रिपुकर्मघडी धन, धर्म चुरावन-

---

१ " मंगलतरुहिं उपावन धरनी " ऐसा भी पाठ है। २ नौका । ३ कर्मबंध । ४ तीखी छैनी । ५ मुनियोंकी मनरूपी कुमोदिनीको प्रफुल्लित करनेकेलिये चन्द्रमाकी रोशनी । ६ समता-रूपी सुख ही हुआ पुष्प, उसके लिये अच्छी वाटिका । ७ जानते वा अनुभवते हैं । ८ तीन भुवनके राजा इन्द्रादिक । ९ वज्रधारी इन्द्र । १० पृनाका घर । ११ हाड मांस नसोंके समूहकी । १२ कर्मरूपी हरिनोंको फंसानेवाली जगहपर पुतलीके समान । १३ विष्ठा ।

हारी ॥ मत कीज्यौ० ॥ २ ॥ जे जे पावन वस्तु जगत में, ते इन सर्व बिगारी। स्वेदमेदकफक्लेदमयी बहु, मदगद-व्यालपिटारी ॥ मत की० ॥ ३ ॥ जा संयोग रोगभव तौलौं, जा वियोग शिवकारी। बुध तासौं न ममत्व करैं यह, मूढमतिनको प्यारी ॥ मत की० ॥ ४ ॥ जिन पोषी ते भये सदोषी, तिन पाये दुख भारी। जिन तपठान ध्यान-कर शोषी, तिन परनी शिवनारी ॥ मत की० ॥ ५ ॥ सुरधनु शरदजलद जलबुदबुद, त्यौं झट विनशनहारी। यातैं भिन्न जान निज चेतन, 'दौल' होहु शमधारी ॥ मत की० ॥ ६ ॥

१८

जाऊं कहां तज शरन तिहारे ॥ टेक ॥ चूक अनादि-तनी या हमरी, माफ करो करुणा गुन धारे ॥ १ ॥ डूबत हों भवसागरमें अब, तुम बिन को मुह वार निकारे ॥ २ ॥ तुम सम देव अवर नहिं कोई, तातैं हम यह हाथ पसारे ॥ ३ ॥ मोसम अधम अनेक उधारे, वरनत हैं श्रुत शास्त्र अपारे ॥ ४ ॥ "दौलत" को भवपार करो अब, आयो है शरनागत थारे ॥ ५ ॥

---

१ पसीना। २ चरबी। ३ दुःख। ४ मदरोगरूपी सांपके लिये पिटारी। ५ संसाररूपीरोग। ६ क्षीण की। ७ इन्द्रधनुष। ८ शरदऋतुके बादल। ९ समताके धारी।

१९

जबतैं आनंद-जननि दृष्टि परी माई । तबतैं संशय विमोह भरमता विलाई ॥ जबतैं० ॥ टेक ॥ मैं हूं चित-चिह्न, भिन्न परतैं, पर जडस्वरूप, दोउनकी एकता सु, जानी दुखदाई । जबतैं० ॥ १ ॥ रागादिक बंधहेत, बंधन बहु विपति देत, संवर हित जान तासु, हेतु ज्ञानताई । जबतैं ॥ २ ॥ सब सुखमय शिव है तसु, कारन विधिझार[1]न इमि, तत्त्वकी विचारन जिन,—वानि सुधिकराई । जबतैं० ॥ ३ ॥ विषयचाहज्वालतैं, दह्यो अनंतकालतैं सु,-धांबुस्यात्पदांकगाह,[2]-तें प्रशांति आई । जबतैं ॥ ४ ॥ या बिन जगजालमें न शरन तीनकालमें स,—म्हाल चित भजो सदीव, दौल यह सुहाई । जबतैं० ॥ ५ ॥

२०

भज ऋषिपति[3] ऋषभेश[4] ताहि नित, नमत अमर असुरा । मनमथ[5] मथ दरशावन शिवपथ[6], वृष-रथ-चक्र-धुरा ॥ भज० ॥ टेक ॥ जा प्रभु गर्भ छमासपूर्व सुर, करी सुवर्ण धरा । जन्मत सुरगिर धर सुरगनयुत, हरि[7] पय न्हवन करा ॥ भज० ॥ १ ॥ नटत नर्तकी[8] विलय

---

१ निर्जरा । २ स्याद्वादरूपी अमृतमें अवगाहन करनेसे । ३ मुनिनाथ । ४ धर्मके ईश आदिनाथ भगवान् । ५ कामदेवके मथनेवाले । ६ मोक्षपथ ७ इन्द्र । ८ अप्सरा ।

देख प्रभु, कहि विराग सु थिरा । तबहि देवऋषि[1] आय नाय शिर, जिनपर पुष्प धरा ॥ भज० ॥ २ ॥ केवल समय जास बेच रविने[2], जगभ्रम-तिमिर हरा । सुदृग-बोध-चारित्र पोत[3]कहि, भवि भवसिंधु तरा ॥ भज० ॥ ३ ॥ योगसंहार निवार शेष[4]विधि- निवसे वसुम[5] धरा । दौलत जे याको जस गावें, ते ह्वै अज अमरा ॥ भज० ॥ ४ ॥

२१

जगदानंदन जिन अभिनंदन, पदअरविंद नमूं मैं तेरे । जग० ॥ टेक ॥ अरुणबरन अघताप हरन वर, वितरन कुशल सु शरन वडेरे । पद्मासदन[6] मदन मद-भंजन[7], रंजन मुनिजनमनअलिकेरे ॥ जग० ॥ १ ॥ ये गुन सुन मैं शरनै आयो, मोहि मोह दुख देत घनेरे । ता मदभानन स्वपर पिछानन, तुम विन आन न कारन हेरे ॥ जग० ॥ २ ॥ तुम पदशरण गही जिनतैं ते, जामन-जरा-मरन-निरवेरे । तुमतैं विमुख भये शठ तिनको, चहुं गति विपतमहाविधि पेरे ॥ जग० ॥ ३ ॥ तुमरे अमित सुगुन ज्ञानादिक, सतत मुदित गनराज उगेरे[8] । लहत न मित मैं पतित[9] कहों किम, किन शशंकन[10] गिरिराज उखेरे ॥ जग० ॥ ४ ॥ तुम विन राग

१ लैाकांतिकदेव । २ वचनरूपी सूर्यने । ३ जहाज । ४ शेषके चार-अघातिकर्म । ५ आठवीं पृथ्वी अर्थात् मोक्ष । ६ लक्ष्मीके घर । ७ मदका नाश करनेके लिये । ८ गाये । ९ पापी । १० खर्गोशोंने ।

दोष दर्पनज्यों, निम निज भाव फलैं तिनकेरे । तुम हो सहज जगत उपकारी, शिवपथ-सारथवाह भलेरे ॥ जग० ॥ ५ ॥ तुम दयाल बेहाल बहुत हम, काल-कराल-व्याल-चिर-घेरे । भाल नाय गुणमाल जपों तुम, हे दयाल, दुखटाल सवेरे[1] ॥ जग० ॥ ६ ॥ तुम बहु पतित सुपावन कीने, क्यों न हरो भव संकट मेरे । भ्रम-उपाधि-हर शमसमाधिकर[2], दौल भये तुमरे अब चेरे ॥ जग० ॥ ७ ॥

११

पद्मसद्म[3] पद्मापद पद्मा, मुक्तिसद्म दरशावन है । कलि-मल-गंजन मन अलि रंजन, मुनिजन शरन सुपावन है ॥ पद्मा० ॥ टेक ॥ जाकी जन्मपुरी कुशंबिका, सुर नर-नाग-रमावन है । जास जन्मदिनपूरब षटनव,—मास रतन बरसावन है ॥ पद्मा० ॥ १ ॥ जा तपथान पपोसा[6] गिरि सो, आत्म—ज्ञान थिर-थावन है । केवलजोत उदोत भई सो, मिथ्यातिमिर-नशावन है ॥ पद्मा० ॥ २ ॥ जाको शासन पंचानन[8]सो, कुमति मतंग[9] नशावन है । राग विना सेवक जन तारक, पै तसु रुषतुष[10] भाव न है ॥

---

१ शीघ्र । २ शान्तिसमाधि । ३ समवसरण लक्ष्मीके । ४ पद्मप्रभके चरण । ५ पद्मामुक्ति = मोक्षलक्ष्मी । ६ पपोसा नामका पर्वत है । ७ वन देश । ८ सिंह । ९ हाथी । १० रोष. तोष = द्वेष, राग ।

प्रभा० ॥ ३ ॥ जाकी महिमाके वरननसों, सुरगुरु[1] बुद्धि थकावन है। दौल अल्पमतिको कहबो जिमि, शशक[2] गिरिंद धकावन है ॥ प्रभा० ॥ ४ ॥

२३

चन्द्रानन जिन चन्द्रनाथके, चरन चतुर-चित ध्यावतु हैं। कर्म-चक्र-चकचूर चिदातम, चिनमूरत पद पावतु हैं ॥ चन्द्रा० ॥ टेक ॥

हाहा[3]-हूहू-नारद-तुंबर, जासु अमल जस गावतु हैं। पदमा सची शिवा श्यामादिक, करधर बीन बजावतु हैं ॥ चन्द्रा० ॥ १ ॥ विन इच्छा उपदेश माहिं हित, अहित जगत दरसावतु हैं। जा पदतट सुर नर मुनि घट[4] चिर, विकट विमोह नशावतु हैं ॥ चन्द्रा० ॥ २ ॥ जाकी चन्द्र वरन तनदुतिसों, कोटिक सूर[5] छिपावतु हैं। आतमजोत उदोतमाहिं सब, ज्ञेय[6] अनंत दिपावतु हैं ॥ चन्द्रा० ॥ ३ ॥ नित्य-उदय अकलंक अछीन सु, मुनि-उडु[7]-चित्त रमावतु हैं। जाकी ज्ञानचन्द्रिका लोका-लोक माहिं न समावतु हैं ॥ चन्द्रा० ॥ ४ ॥ साम्यसिंधु[8] वर्द्धन जगनंदन[9], को शिर हरिगन नावतु हैं। संशय विभ्रम

१ इन्द्रकी बुद्धि। २ जैसे खगोश सुमेरुको धकेलना चाहे। ३ हाहा, हूहू, नारद और तुंबर ये गंधर्व देवोंके भेद हैं। ४ देव मनुष्योंके हृदयका। ५ सूर्य। ६ पदार्थ। ७ तारा। ८ समतारूपी समुद्रको बढानेवाला। ९ जगको आनंदित करनेवाला।

मोह दौलके, हर जो जगभरमावतु हैं ॥ चन्द्रानन जिन० ॥ ५ ॥

२४

जय जिन वासुपूज्य शिव-रमनी-रमन मदन-दनु-दारन[1] हैं। बालकाल संयम सम्हाल रिपु, मोहव्याल[2] बलमारन हैं ॥ जय जिन० ॥ १ ॥ जाके पंचकल्यान भये चंपापुरमें सुखकारन हैं । वासववृंद[3] अमंद मोद धर, किये भवोदधि तारन हैं ॥ जय जिन० ॥ २ ॥ जाके वैन सुधा त्रिभुवन जन,-को भ्रमरोग विदारन हैं। जा गुनचिंतत अमलअनल मृत,-जनम-जरा-वन-जारन हैं ॥ जय० ॥ ३ ॥ जाकी अरुन शांतछवि-रविभा, दिवस प्रबोध प्रसारन हैं। जाके चरन शरन सुरतरु[4] वांछित शिवफल विस्तारन हैं ॥ जयजिन० ॥ ४ ॥ जाको शासन सेवत मुनि जे, चारज्ञानके धारन हैं। इन्द्र-फणींद्र-मुकुटमणि-दुतिजल, जापद कलिल[5] पखारन हैं जय० ॥ ५ ॥ जाकी सेव अछेवरमाकर[6], चहुंगतिविपति उधारन हैं। जा अनुभवघनसार[7] सु आकुल,-तापकलाप[8] निवारन हैं ॥ जय० ॥ ६ ॥ द्वादशमों जिनचन्द्र जास

१ कामदेवरूपी राक्षसको मारनेवाले । २ मोहरूपी सांप । ३ इन्द्रोंके समूह । ४ कल्पवृक्ष । ५ पाप । ६ अक्षयलक्ष्मी (मोक्ष) की करनेवाली । ७ अनुभवरूपी मलयागिर चन्दन । ८ आकुलताके तापका समूह ।

वर, जस उजासको पार न है। भक्तिभारतें नमें दौलके, चिर-विभाव-दुख टारन हैं॥ जय०॥ ७॥

२५

कुंथुनके प्रतिपाल कुंथ जग,-तार सारगुनधारक हैं। वर्जितग्रन्थ कुपंथवितर्जित, अर्जितपंथ अमारक हैं॥ कुन्थुनके०॥ टेक॥ जाकी समवसरनबहिरंग,-रमा गनधार अपार कहैं। सम्यग्दर्शन-बोध-चरण-अध्यातम-रमा-भरधारक हैं॥ कुन्थु०॥१॥ दशधा-धर्म-पोतकर भव्यन,-को भवसागर तारक हैं। वरसमाधि-वन-घन विभावरज, पुंजनिकुंजनिवारक हैं॥ कुंथु०॥ २॥ जासु ज्ञाननभमें अलोकजुत-लोक यथा इक तारक हैं। जासु ध्यानहस्तावलम्ब दुख-कूपविरूप-उधारक हैं॥ कुंथु०॥ ३॥ तज छखंडकमला प्रभु अमला, तपकमला आगारक हैं। द्वादशसभा-सरोजसूर भ्रम,-तरुअंकूर उपारक हैं॥ कुंथुनके०॥ ४॥ गुणअनंत कहि लहत अंत को? सुरगुरुसे बुध हार कहैं। नमें दौल हे कृपाकंद, भवद्वंद टार बहुबार कहैं॥ कुंथुन०॥ ५॥

२६

पांस अनादि-अविद्या मेरी, हरन पास परमेशा है।

---

१ छोटे २ जीवोंके भी। २ परिग्रहरहित। ३ अहिंसक पंथके अर्जन करनेवाले। ४ गणधरदेव। ५ दशलक्षण धर्मरूपी जहाज करके। ६ छह खंडकी लक्ष्मी। ७ अनादि अविद्यारूपी फांसी। ८ पार्श्वनाथ भगवान।

चिद्विकास सुखरासप्रकाशवितरन त्रिभौन[1]–दिनेशा है ॥ टेक ॥ दुर्निवार कंदर्पसर्पको[2] दर्पविदरन खगेशा[3] है । दुठ-शठ-कमठ—उपद्रवमलयसमीर–सुवर्णनगेशा[4] है । पास० ॥ १ ॥ ज्ञान अनन्त अनन्त दर्श बल, सुख अनन्त पदमेशा[5] है । स्वानुभूति-रमनी-वर[6] भवि-भव-गिर-पवि[7] शिवं-सदमेशा[8] है ॥ पास० ॥ २ ॥ ऋषि मुनि यति अनगार सदा तिस, सेवत पादकुशेसा[9] है । वदनचन्द्रतैं झरै गिरामृत[10], नाशन जन्म-कलेशा है ॥ पास० ॥ ३ ॥ नाममंत्र जे जपैं भव्य तिन, अघअहि नशत अशेषा[11] है । सुर अहमिन्द्र खगेन्द्र चन्द्र ह्वै, अनुक्रम होंहि जिनेशा है ॥ पास० ॥ ४ ॥ लोक-अलोक-ज्ञेय-ज्ञायक पै, रत निजभावचिदेशा है । रागविना सेवकजन-तारक, मारक[12] मोह न द्वेषा है ॥ पास० ॥ ५ ॥ भद्रसमुद्र-विवर्द्धन अद्भुत पूरनचन्द्र सुवेशा है । दौल नमैं पद तासु, जासु, शिवथल समेदअचलेशा[13] है ॥ पास० ॥ ६ ॥

---

१ तीन लोकके सूर्य । २ कामदेवरूपी सर्पको । ३ गरुडपक्षी । ४ दुष्ट, शठ, ऐसे कमठके उपद्रवरूपी प्रलयकालकी आंधीको सहन करनेवाले मेरुपर्वत हो । ५ लक्ष्मीके ईश । ६ स्वानुभवरूपी स्त्रीके दूल्हा । ७ भव्योंके संसाररूपी पर्वतके नष्ट करनेको वज्रके समान । ८ मोक्ष महल के मालिक । ९ चरणकमल । १० वचनरूपी अमृत । ११ सब । १२ मोह के मारनेवाले । १३ सम्मेदशिखर ।

२७

जय शिव-कामिनि-कन्त वीर भगवन्त अनन्तसुखाकर हैं । विधि-गिरि-गंजन बुधमनरंजन, भ्रमतमभञ्जन भाकर हैं ।। जय० ।। टेक ।। जिनउपदेश्यो दुंविधधर्म जो सो सुरसिद्धिरमाकर हैं । भवि-उर-कुमुदनि-मोदन भवतप. हरन अनूप निशाकर हैं ।।जय० ।। १ ।। परम विरागि रहैं जगतैं पै, जगतजंतुरक्षाकर हैं । इन्द्र फणीन्द्र खगेन्द्र चन्द्र जग,-ठाकर ताके चाकर हैं ।। जय० ।। २ ।। जासु अनन्त सुगुनमणिगन नित गनत गनीगन थाक रहैं । जा प्रभुपद नवकेवलिलब्धि सु, कमलाको कमलाकर हैं ।। जय० ।। ३ ।। जाके ध्यान-कृपान रागरुष,-पासहरन समताकर हैं । दौल नमै कर जोर हरन भव, बाधा शिवराधाकर हैं ।। जय० ।। ४ ।।

२८

जय श्रीवीर जिनेन्द्रचन्द्र, शतइन्द्रवंद्य जगतारं । जय० ।। टेक ।। सिद्धारथकुल-कमल-अमल-रवि, भवभूधरपविभारं । गुनमनिकोष अदोष मोषपति, विपिन कषायतुषारं ।। जय० ।। १ ।। मदनकदन शिवसदन

१ वर्द्धमान भगवान । २ कर्मरूपीपर्वतके नष्ट करनेवाले । ३ सूर्य । ४ दो प्रकारका धर्म गृहस्थ और मुनिका । ५ स्वर्ग और मोक्ष लक्ष्मीका करनेवाला है । ६ चन्द्रमा । ७ ध्यानरूपी तरवारसे रागद्वेषकी फांसीको काटनेवाला । ८ संसाररूपी पर्वतको बडे भारी वज्रके समान । ९ कषायरूपी वनको तुषार

पद-नमित, नित अनमित यतिसारं। रमा[1]अनंतकंत अंतक[2]-कृत,-अंत जंतुहितकारं ॥ जय० ॥ २ ॥ फंद[3] चंदनाकंदन दादुर[4]दुरित तुरित निर्वारं। रुद्र[5]रचित अतिरुद्र उपद्रव,-पवन अद्रिपति सारं ॥ जय० ॥ ३ ॥ अंता[6]तीत अचित्य सुगुन तुम, कहत लहत को पारं। हे जग[7]मौल दौल तेरे क्रम[8], नमै शीस कर धारं ॥ जय० ॥ ४ ॥

२९

उरग-सुरग-नरईश शीस जिस, आतपत्र[9] त्रिधरे[10]। कुंदकुसुम[11]सम चमर अमरगन, ढारत मोदभरे ॥ उरग० ॥ टेक ॥ तरु अशोक जाको अवलोकत, शोकथोक उजरे। पारजातसंतानकादिके, बरसत सुमन वरे ॥ उरग० ॥ १ ॥ सुमणिविचित्र पीठअंबुजपर, राजत जिन सुथिरे। वर्णवि[12]-गत जाकी धुनिको सुनि, भवि भवसिंधुतरे ॥ उरग० ॥ २ ॥ साढे बारह कोड़ जातिके, बाजत तूर्य[13] खरे। भामं-डलकी दुतिअखंडने रविशशि मंद करे। उरग० ॥ ३ ॥ ज्ञान अनंत अनंत दर्श बल, शर्म अनंत भरे। करुणामृत-पूरित पद जाके, दौलत हृदय धरे ॥ उरग० ॥ ४ ॥

---

१ अनन्त मोक्षलक्ष्मीके पति। २ यमराजका भी किया है अन्त जिन्होंने ऐसे। ३ चंदनासतीके फंद काटनेवाले। ४ समवसरणमें पुष्प लेकर जानेवाले मेंडकके पाप। ५ रुद्रनामक दैत्यके किये हुए। ६ अनंत। ७ जगन्मुकुट। ८ चरण। ९ छत्र। १० तीन धरे। ११ कुन्दके फूल। १२ अनक्षरी। १३ बाजे।

३०

भविन-सरोरुहसूर[1] भूरिगुनपूरित अरहंता। दुरित दोप[2] पोप पथघोपक, करन कर्मअन्ता ॥ भविन० ॥ टेक ॥ दर्शबोधतैं[3] युगपतलखि जाने जु भावऽनन्ता। विगताकुल[4] जुतसुख अनन्त विन,-अन्त शक्तिवन्ता ॥ भविन० ॥ जा तनजोतउदोतथकी रवि, शशिदुति लाजन्ता। तेजथोक अवलोक लगत है, फोक सचीकन्ता[5] ॥ भविन० ॥ २ ॥ जास अनूप रूपको निरखत, हरखत हैं सन्ता। जाकी धुनि सुनि मुनि निजगुनमुन[6], पर-गर[7] उगलंता भविन० ॥ ३ ॥ दौल तौल विन जस तस वरनत, सुरगुरु अकुलंता। नामाक्षर सुन कान स्वानसे, रांक[10] नाकगंता[11] ॥ भविन० ॥ ४ ॥

३१

हमारी वीर हरो भवपीर। हमारी० ॥टेक०॥ मैं दुखतपित दयामृतसर तुम, लखि आयो तुम तीर। तुम परमेश मोखमगदर्शक, मोहदवानलनीर ॥ हमारी० ॥ १ ॥ तुम विनहेत जगतउपकारी शुद्ध चिदानँद धीर। गनपतिज्ञानसमुद्र न लंघैं, तुम गुनसिंधु गहीर ॥ हमारी० ॥ २ ॥ याद

---

१ भव्यरूपीकमलोंको सूर्य। २ दोषरहित। ३ दर्शन और ज्ञानसे। ४ आकुलतारहित। ५ इन्द्र। ६ अपने गुणोंका मनन करके। ७ विभाव रूपी विष। ८ अपरिमित। ९ इन्द्र। १० रंक नाचीज। ११ स्वर्ग गया।

नर्दी मैं त्रिपति सही जो, घर घर अमित शरीर। तुम गुन-चिंतत नशत तथा भय, ज्यों घन चलत समीर॥ हमारी०॥ ३॥ कोटवारकी अरज यही है, मैं दुख सहूं अधीर। हरहु वेदनाफन्द दौलको, कतर कर्म जंजीर॥ हमारी०॥ ४॥

३२

सब मिल देखो हेली म्हारी हे, त्रिसलाबाल वदन रसाल। सब०॥ टेक॥ आये जुतसमवसरन कृपाल, विचरत अभय व्याल मराल, फलित भई सकल तरुमाल। सब०॥ १॥ नैन न हाल भृकुटी न चाल, वैन विदारै विभ्रमजाल, छवि लखि होत संत निहाल। सब०॥ २॥ वंदन काज साज समाज, संग लिये स्वजन पुरजन भ्राज, श्रेणिक चलत है नरपाल। सब०॥ ३॥ यों कहि मोदजुत पुरबाल, लखन चाली चरम जिनपाल, दौलत नमत धर धर भाल॥ सब०॥ ४॥

३३

अरि[1]रज[2]रहस[3] हनन प्रभु अरहन, जैवंतो जगमें। देव अदेव सेव कर जाकी, धरहिं मौलि पगमें॥ अरिरज०॥ टेक॥ जो तन अष्टोत्तरसहस्र लक्खन लखि कलिल शमें। जो वचदीपशिखातैं मुनि विचरैं शिवमारगमें॥ अरिरज०॥ १॥ जास पासतैं शोकहरन गुन, प्रगट भयो नगमें[4]। व्यालमराल

1 मोह। 2 ज्ञानदर्शनावरणी। 3 अन्तराय। 4 अशोकवृक्षमें।

सारंगसिंघको, जातिविरोध गमें ॥ अरिरज० ॥ २ ॥ जा-जस-गगन उलंघन कोऊ, क्षमे न मुनीखगमें। दौल नाम तसु सुरतरु है या, भवमरुथलमगमें ॥ अरि० ॥ ६ ॥

३४

हे जिन तेरे मैं शरणै आया। तुम हो परमदयाल जगतगुरु, मैं भव भव दुख पाया ॥ हे जिन० ॥ टेक ॥ मोह महादुठ घेर रह्यो मोहि भवकाननैं भटकाया। नित निज ज्ञानचरननिधि विसरयो, तन धनकर अपनाया ॥ हे जिन० ॥ १ ॥ निजानंदअनुभवपियूष तज, विषय हलाहल खाया। मेरी भूल मूल दुखदाई, निमित मोहविधि पाया ॥ हे जिन० ॥ २ ॥ सो दुठ होत शिथिल तुमरे ढिग, और न हेतु लखाया। शिवस्वरूप शिवमगदर्शक तुम, सुयश मुनीगन गाया। हे जिन० ॥३॥ तुम हो सहज निमित जग-हितके, मो उर निश्चय भाया ॥ भिन्न होहुं विधितें सो कीजे दौल तुम्हें सिर नाया ॥ हे जिन० ॥ ४ ॥

३५

हे जिन मेरी, ऐसी बुधि कीजै। हे जिन० ॥ टेक ॥ रागद्वेषदावानलतें बचि, समतारसमें भीजै। हे जिन० ॥ १ ॥ परकों त्याग अपनपो निजमें, लाग न कबहूं

---

१ समर्थ। २ संसाररूपी मारवाड देशके मार्गमें। ३ दुष्ट। ४ संसाररूपी वन। ५ अमृत। ६ कर्मोंसे। ७ आत्मत्व, अपनापना।

कीजै ॥ हे जिन० ॥ १ कर्म कर्मफलमाहि न राचै, ज्ञान-सुधारस पीजै ॥ हे जिन० ॥ ३ ॥ मुझ कारजके तुम कारन वर, अरज दौलकी लीजै । हे जिन० ॥ ४ ॥

३६

शामरियाके नाम जपेतैं, छूट जाय भवभांमरियां । शाम० ॥ टेक ॥ दुरित दुरत पुन पुरत फुरनै गुन, आतमकी निधि आगरियां । विघटत है परदाह चाह झट, गटकत समरस गागरियां । शाम० ॥ १ ॥ कटत कलंक कर्म कलसायन, प्रगटत शिवपुरडागरियां । फटत घटाघन मोह छोह हट, प्रगटत भेद-ज्ञान घरियां ॥ शाम० ॥ २ ॥ कृपाकटाक्ष तुमारीहीतैं, जुग-लनागविपदा टरियां । धार भये सो मुक्तिरमावर, दौल नमैं तुव पागरियां ॥ शाम० ॥ ३ ॥

३७

शिवमगदरसावन रांवरो दरस । शिवमग० ॥ टेक ॥ पर-पद-चाह-दाह-गद नाशन, तुम बचभेषज-पान सरस । शिवमग० ॥ १ ॥ गुणचिंतवत निज अनुभव प्रगटै, विघटै

---

१ भवभ्रमण । २ पाप । ३ छिपते हैं । ४ स्फुरित होता है । ५ गटकते हैं अर्थात् पीते हैं । ६ कालिमा । ७ मोक्षकी डगर अर्थात् रास्ता । ८ रागद्वेष । ९ तुम्हारा नाम धारण करके । १० आपका । ११ पुद्गलस-म्बन्धी चाहका दाहरूपी रोग नाश करनेके लिये दवा ।

विघिठग दुविघ नरस । शिवमग० ॥२॥ दौल अवाची* संपति सांची, पाय रहै थिर राच सरस । शिवमग० ॥ ३ ॥

३८

मेरी सुध लीजै रिषभस्वाम । मोहि कीजै शिवपथगाम ॥टेक॥ मैं अनादि भवभ्रमत दुखी अब, तुम दुख मेटत कृपाधाम । मोहि मोह घेरा कर चेरा, पेरा चहुंगति विदित ठाम । मेरी० ॥ १ ॥ विषयन मन ललचाय हरी मुझ, शुद्धज्ञान-संपति-ललाम । अथवा यह जड़को न दोष मम, दुखसुखता, परन-तिसुकाम ॥ मेरी० ॥ २ ॥ भाग जगे अब चरन जपे तुम, वच सुनके गहे सुगुनग्राम[2] । परमविराग ज्ञानमय मुनिजन, जपत तुमारी सुगुनदाम[3] । मेरी० ॥३॥ निर्विकार संपति कृति तेरी, छविपर वारों कोटिकाम । भव्यनिके भव हारन कारन, सहज यथा तमहरन घाम[4] ॥ मेरी० ॥ ४ ॥ तुम गुनमहिमा कथनकरनको, गिनत गनी[5] निजबुद्धि खाम[6] । दौलतनी[7] अ-ज्ञान परनती, हे जगत्राता कर विराम ॥ मेरी० ॥ ५ ॥

३९

मोहि तारो जी क्यों ना ? तुम तारक त्रिजग त्रिकालमें, मोहि० ॥ टेक ॥ मैं भवउदधि पर्यो दुख भोग्यो, सो दुख

---

* अवाच्य, जिसका वर्णन न होसके । २ गुणोंके समूह । ३ गुणोंकी माला । ४ सूर्यका प्रकाश । ५ गणधर । ६ कोताही कमी । दौलतकी ।

जात कह्यौ ना । जामन मरन अनंततनो तुम जानन माहिं छिप्यो ना ॥ मोहि० ॥ १ ॥ विषय विरसरस विषम भख्यो मैं, चख्यौ न ज्ञान सलोना । मेरी भूल मोहि दुख देवै, कर्मनिमित्त भलौ ना ॥ मोहि० ॥ २ ॥ तुम पदकंज धरे हिरदै जिन, सो भवताप तप्यौ ना । सुरगुरुहूके वचनकरनंकर तुम जसगगन नंप्यौ ना ॥ मोहि० ॥ ३ ॥ कुगुरु कुदेव कुश्रुत सेये मैं, तुम मत हृदय धरयो ना । परम विराग ज्ञानमय तुम जाने विन काज सरयौ ना ॥ मोहि० ॥ ४ ॥ मो सम पतित न और दयानिधि, पतिततार तुम सौ ना । दौलतनी अरदास यही है फिर भववास वसौं ना ॥ मोहि० ॥ ५ ॥

४०

मैं आयो, जिन शरन तिहारी । मैं चिरदुखी विभावभावतैं, स्वाभाविक निधि आप विसारी ॥ मैं० ॥ १ ॥ रूप निहार धार तुम गुन सुन, वैन होत भवि शिवमगचारी । यौं मम कारजके कारन तुम, तुमरी सेव एक उर धारी ॥ मैं० ॥ २ ॥ मिल्यो अनन्त जन्मतैं अवसर, अव विनऊं हे भवसरतारी । परम इष्ट अनिष्ट कल्पना, दौल कहै झट मेट हमारी ॥ मैं० ॥ ३ ॥

---

१ वचनरूपी किरणोंसे अथवा हाथोंसे । २ मापा नहीं गया । ३ पापी ४ पापियोंका तारनेवाला । ५ अर्जी ।

४१

मैं हरख्यौ निरख्यौ मुख तेरो । नासान्यस्त नयन भ्रू हलय न, वयन निवारन मोह अंधेरो ॥ मैं० ॥ १ ॥ परमें कर मैं निजबुधि अब लों, भवसरमें दुख सह्यौ घनेरो । सो दुख भानन स्वपर,-पिछानन, तुमविन आन न कारन हेरो ॥ मैं० ॥ २ ॥ चाह भई शिवराहलाहकी गयौ उछाह असंजमकेरो । दौलत हितविराग चित आन्यौ, जान्यौ रूप ज्ञानदृग मेरो ॥ मैं० ॥ ३ ॥

४२

प्यारी लागै म्हाने जिन छवि थारी ॥ टेक ॥ परम निराकुलपद दरसावत, वर विरागताकारी । पट भूषन विन पै सुन्दरता, सुरनरमुनिमनहारी ॥ प्यारी० ॥ १ ॥ जाहि विलोकत भवि निज निधि लहि, चिरविभावता टारी । निर्निमेषतैं देख सचीपती, सुरता सफल विचारी ॥ प्यारी० ॥ २ ॥ महिमा अकथ होत लख ताकी, पशु सम समकितधारी । दौलत रहो ताहि निरखनकी, भव भव टेव हमारी ॥ प्यारी० ॥ ३ ॥

४३

निरखत सुख पायौ, जिन मुखचन्द । नि० ॥ टेक ॥ मोह महातम नाश भयौ है, उर अम्बुज प्रफुलायौ ।

---

१ नासिकापर लगाई है दृष्टि जिसने । २ भौंहें नहीं हिलती हैं । ३ लाभ--प्राप्तिकी । ४ टिमकाररहित । ५ इन्द्र । ६ देवपणा ।

ताप नस्यौ बढि उदधि अनन्द। निरख० ॥ चकवी कुमति बिछुर अति बिलखै, आतमसुधा स्रवायौ। शिथिल भए सब विधिगनफन्द ॥ निरख० ॥ २ ॥ विकट भवोदधिको तट निकट्यौ, अघतरुमूल नसायौ। दौल लह्यौ अब सुपद स्वछन्द ॥ निरख० ॥ ३ ॥

४४

निरख सखि ऋषिनको ईश यह ऋषभ जिन, परखिके स्वपर[1] परसौंज छारी। नैन नासाग्र धरि मैन[2] बिनसायकर, मौनजुत स्वास दिशि-सुरभिकारी[3] ॥ निरख० ॥ १ ॥ धरासम क्षांतियुत नरामरखचरनुत[4], वियुत[5] रागादिमद दुरित-हारी[6]। जास क्रमपास[7] भ्रमनाश पंचास्य[8] मृग, वासकरि प्रीतिकी रीति धारी ॥ निरख० ॥ २ ॥ ध्यानदवमाहिं[9] विधिदारु[10] प्रजराहिं सिर, केशशुभ जिमि धुआं दिशि विथारी[11]। फंसे जगपंक जनरंक तिन काढने, किधौं जगनाह यह बांह सारी[12] ॥ निरख० ॥ ३ ॥ तप्त हाटकवरन[13] वसन विन आभरन, खरे थिर ज्यौं शिखर मेरुकारी[14]। दौलको देन शिवधौल[15] जगमौल जे, तिन्हैं कर जोर बन्दन हमारी ॥ निरख०

---

१ परपरणति। २ काम। ३ दिशाओंको सुगन्धित करनेवाली। ४ मनुष्य देव विद्याधरोंसे वन्दनीय। ५ रहित। ६ पाप। ७ चरण। ८ सिंह। ९ ध्यानरूपी अग्निसे। १० कर्मरूपी ईंधन। ११ बिस्तारी। १२ पसारी। १३ तपाये हुये सोनेका सा रंग। १४ मेरुका। १५ मुक्ति-रूपी महल।

४५

ध्यानकृपान[1] पानि गहि नासी, त्रेसठ प्रकृति[2] अरी । शेष पँचासी लाग रही है, ज्यौं जेवरी जरी ॥ ध्यान० ॥टेक॥ दुठ अनंगमातंगभंगकर[3], है प्रबलंगहरी[4] । जा पदभक्ति भक्तजनदुख-दावानल-मेघझरी ॥ ध्यान० ॥ १ ॥ नवल धवल पल[5] सोहै कलमें[6], क्षुधतृषव्याधि टरी । हलत न पलक अलक[7] नख बढत न गति नभमाहिं करी ॥ ध्यान० ॥ २ ॥ जा विन शरन मरन जर धरधर, महा असात भरी । दौल तास पद दास होत है, वास मुक्तिनगरी ॥ ध्यान० ॥३॥

४६

दीठा भागनतैं जिनपाला[8], मोहनाशनेवाला । दीठा० ॥ टेक ॥ सुभग निशंक रागविन यातैं, वसन न आयुध वाला[9] ॥ मोह० ॥ १ ॥ जास ज्ञानमें युगपत भासत, सकल पदारथमाला ॥ मोह० ॥ २ ॥ निजमें लीन हीन इच्छा पर,—हितमितवचन रसाला । मोह० ॥ ३ ॥ लखि जाकी छवि आतमनिधि निज, पावत होत निहाला । मोह० ॥४॥ दौल जासगुन चिंतत रत है, निकट विकट भवनाला ॥ मोह० ॥ ५ ॥

---

१ ध्यानरूपी तलवार । २ घातिया कर्मोकी प्रकृतियें । ३ कामदेवरूपी हस्तीको मारनेवाले । ४ बलवान सिंह । ५ मांस व रुधिर । ६ शरीरमें । ७ केस ८ सम्यग्दृष्टीसे लगाकर बारहवें गुणस्थानतकके जीवोंको जिन[illegible] हैं, उनका रक्षक । ९ स्त्री ।

होली ४७

ज्ञानी ऐसी होली मचाई० ॥ टेक ॥ राग कियौ विपरीत विपन घर, कुमति कुसौति सुहाई । धार दिगम्बर कीन्ह सु संवर, निज-परभेद लखाई । घात विषयनिकी बचाई ॥ ज्ञानी ऐसी० ॥ १ ॥ कुमति सखा भजि ध्यानभेद सम, तनमें तान उड़ाई । कुंभक ताल मृदंगसौं पूरक, रेचक बीन बजाई । लगन अनुभवसौं लगाई ॥ ज्ञानी ऐसी० ॥ २ ॥ कर्मबलीता रूप नाम अरि, वेद सुइन्द्रि गनाई । दे तप अग्नि भस्म करि तिनको, धूल अघाति उड़ाई । करी शिव तियकी मिलाई ॥ ज्ञानी ऐसी० ॥ ३ ॥ ज्ञानको फाग भागवश आवै, लाख करौ चतुराई । सो गुरु दीनदयाल कृपाकरि, दौलत तोहि बताई । नहीं चितसे विसराई ॥ ज्ञानी ऐसी होली मचाई ॥ ४ ॥

होली ४८

मेरो मन ऐसी खेलत होरी ॥ टेक ॥ मन मिरदंग साजकरि त्यारी, तनको तमूरा बनोरी । सुमति सुरंग सरंगी बजाई, ताल दोउ कर जोरी । राग पांचौं पद कोरी ॥ मेरो मन ॥ १ ॥ समकृति रूप नीर भर भारी, करुना केशर घोरी । ज्ञानमई लेकर पिचकारी, दोउ करमाहिं सम्होरी । इन्द्रि पांचों सखि वोरी ॥ मेरो मन० ॥ २ ॥ चतुर दानको

ई गुलाल सो, भरि भरि मूठि चलोरी । तप मेवाकी भरि निज झोरी, यशको अबीर उडोरी । रंग जिनधाम मचोरी ॥ मेरो मन० ॥ ३ ॥ दौल बाल खेलें अस होरी, भवभव दुःख टलोरी । शरना ले इक श्रीजनको री, जगमें लाज हो तोरी । मिलै फगुआ शिवगोरी । मेरो मन० ॥ ४ ॥

४९

निरखत जिनचंद री माई ॥ टेक ॥ प्रभुदुति देख मंद भयो निशिपति, आन सु पग लिपटाई । प्रभु सुचंद वह मन्द होत है, जिन लखि सूर छिपाई । सीव अदभुत सो बताई ॥ निरखत जिन० ॥ १ ॥ अंबर शुभ्र निज़ंतर दीसै, तत्त्वमित्र सरसाई । फैलि रही जग धर्म जुन्हाई, चारन चार कलाई । गिरा अमृत जो गनाई ॥ निरखत जिन० ॥ २ ॥ भये प्रफुल्लित भव्य कुमुदमन, मिथ्यातम सो नसाई । दूर भये भवताप सबनिके, बुध अंबुध सो बढाई । मदन चकवेकी जुदाई ॥ निरखत जिन० ॥ ३ ॥ श्रीजिन-चंद वन्द अब दौलत, चितकर चन्द लगाई । कर्मबन्ध निर्बन्ध होत हैं, नागसुदमनि लसाई ॥ होत निर्विष सरपाई । निरखत जिन० ॥ ४ ॥

५०

चलि सखि देखन नाभिरायघर, नाचत हरि नटवा[1] चल० ॥ टेक ॥ अदभुत ताल मान शुभलययुत, चवत[2] राग षटवा[3] । चलि सखि० ॥ १ ॥ मनिमय नूपुरादिभूषन-दुति, युत सुरंग पटवा[4] । हरिकर[5] नखन नखनपै सुरतिय, पगफेरत कटवा[6] । चलि० ॥ २ ॥ किन्नर करधर वीन वजावत, लावत लय झटवा[7] । दौलत ताहि लखें चख[8] तृपते, सूझत शिववटवा[9] । चलि० ॥ ३ ॥

५१

आज गिरिराज निहारा, धनभाग हमारा । श्रीसम्मेद नाम है जाको, भूपर तीरथ भारा ॥ आज गिरि० ॥ टेक ॥ तहां बीस जिन मुक्ति पधारे, अवर मुनीश अपारा । आरजभूमिशिखामनि सोहै, सुरनरमुनि–मनप्यारा ॥ आज गिरि० ॥ १ ॥ तहं थिर योग धार योगीसुर, निज-परतत्त्व विचारा । निज स्वभावमें लीन होयकर, सकल विभाव निवारा ॥ आज गिरि० ॥ २ जाहि जजत भवि भावनतें जब, भवभवपातक टारा । जिनगुन धार धर्मधन संचो, भव-दारिदहरतारा ॥ आज गिरि० ॥ ३ ॥ इक नभ नव इक वर्ष (१९०१) माघवदि, चौदश वासर सारा । माय नाय जुत साथ दौलने, जय जय शब्द उचारा ॥ आज गिरि० ॥४॥

---

१ इन्द्ररूपी नट । २ गाते हैं । ३ छै राग । ४ कपड़े । ५ इन्द्रके हाथोंके नखों पर । ६ कमर । ७ शीघ्र ही । ८ नेत्र । ९ मोक्षमार्ग ।

५२

आज मैं परम पदारथ पायौ, प्रभुचरनन चित लायौ । आज० ॥ टेक ॥ अशुभ गये शुभ प्रगट भये हैं सहजकल्पतरु छायौ । आज० ॥ १ ॥ ज्ञानशक्ति तप ऐसी जाकी, चेतनपद दरसायो । आज० ॥ २ ॥ अष्ट-कर्म रिपु जोधा जीते, शिव अंकूर जमायौ । आज० ॥ ३ ॥

५३

नेमिप्रभूकी श्यामवरन छवि, नैनन छाय रही ॥ टेक ॥ मणिमय तीनपीठपर अंबुज, तापर अधर ठही । नेमि० ॥ १ ॥ मार* मार तप धार जार विधि, केवलऋद्धि लही । चारतीस अतिशय दुतिमंडित नव[2]दुगदोष नहीं । नेमि० ॥ २ ॥ जाहि सुरासुर नमत स[3]तत, मस्तकतैं परस मही[4] । सुरगुरुवर अम्बुजमफुलावन अद्भुत भान सही । नेमि० ॥ ३ ॥ धर अनुराग विलोकत जाको, दुरित नसै सब ही । दौलत महिमा अतुल जासकी, कापै जात कही । नेमि० ॥ ४ ॥

५४

अहो नमि जिनप नित नमत शत[5] सुरप, कंदर्प[6]गर्व[7] दर्पनाशन प्रबल पंनलपन[8] । अहो० ॥ टेक ॥ नाथ

---

* कामदेवको मारके । २ अष्टादश । ३ निरन्तर । ४ पृथिवी ५ सौ इन्द्र । ६ कामदेव । ७ गर्व । ८ पन = पांच है, लपन = मुख जिसके ऐसा पंचानन अर्थात् सिंह ।

तुम बानि पयपान जे करत भवि, नसै तिनकी जरामरन-जापनतपन। अहो नमि० ॥ १ ॥ अहो शिवभौन तुम चरनचितौन जे, करत तिन जरत भावी दुखद भवविपेन ॥ हे भुवनपाल तुम विशदगुनमाल उर, धरैं ते लहैं टुक कालमें श्रेयपन। अहो नमि० ॥ २ ॥ अहो गुनतूप तुमरूप चख सहस करि, लखत सन्तोष प्रापति भयो नाकप न ॥ अँग, अफल, तज सकल दुखद परिगह कुगह, दुसहपरिसह सही धार व्रत सार पन। अहो नमि० ॥३ ॥ पाय केवल सकल लोक करवत लख्यो, अख्यो वृष द्विधा सुनि नसत भ्रमतमझँपन नीच कीचक कियो मीचतैं रहित जिम, दौलको पास ले नास भववास पनँ। अहो नमि० ॥ ४ ॥

५५

प्रभु मोरी ऐसी बुधि कीजिये। रागदोषदावानलसे बच, समतारसमें भीजिये। प्रभु० ॥ टेक ॥ परमें त्याग अपनपो निजमें, लाग न कबहूं छीजिये। कर्म कर्मफलमाहिं न राचत, ज्ञान सुधारस पीजिये।

---

*भविष्यत्में दुख देनेवाले। २ संसाररूपी वन। ३ स्वच्छ। ४ चलमता ५ गुणोंके समूह। ६ इन्द्र। ७ नहीं है आगेको जन्म जिसका। ८ निष्पाप ९ खोटे ग्रह। १० उपदेश दिया। ११ कपन। १२ मृत्युसे। १३ दौलतको ऐसा भी पाठ है। १४ पंच परावर्तन रूप संसार। १५ इस पदके दौलत-रामजीकृत होनेमें संदेह है। १६ न्यून न होवे।

प्रभु मोरी० ॥ १ ॥ सम्यग्दर्शन ज्ञान चरननिधि, ताकी प्राप्ति करीजिये । मुझ कारजके तुम बड कारन, अरज दौलकी लीजिये । प्रभु मोरी० ॥ २ ॥

५६

वारी हो बधाई या शुभ साजे । विश्वसेन [1]ऐरादेवी-गृह, जिनभव[2]मंगल छाजे । वारी० ॥ टेक ॥ सब अमरेश, [3]अशेष विभवजुत, नगर [4]नागँपुर आये । नाग-[5]दत्त सुर-इन्द्रवचनतैं, ऐरावत सज धाये । लखजोजन शतवदन वदनवसु, [6]रद प्रतिसर ठहराये । सर-सर सौ-पन वीस नलिनप्रति, पद्म पचीस विराजै । वारी हो० ॥ १ ॥ पद्मपद्मप्रति अष्टोत्तरशत, ठने सुदल मनहारी । ते सब कोटि सताइसपै मुद,-जुत नाचत सुरनारी । नवरसगान ठान काननको उपजावत सुख भारी । वंक लै लावत लंक लचावत, दुति लखि दामनि लाजे । वारी हो० ॥ २ ॥ गोपँ गोपतिय जाय मायढिग, करी तास थुति सारी । सुखनिद्रा जननीको कर नमि [9]अंक लियो जग[10]तारी । लै वसु मंगलद्रव्य दिश[11]सुरी चलीं अग्र शुभकारी । हरखि [12]हरी, चख सहस करी तब, जिन वर निरखनकाजे । वारी हो० ॥ ३ ॥ ता गजेन्द्रपै

१ शान्तिनाथ भगवानकी माता । २ भगवानके जन्मका उत्सव । ३ सम्पूर्ण । ४ हस्तिनांपुर । ५ कुवेर । ६ दांत । ७ गुप्त रूपसे । ८ इन्द्राणी । ९ गोदमें । १० भगवानको । ११ दिक्कन्यका देवियां । १२ इन्द्र ।

प्रथम इन्द्रने, श्रीजिनेन्द्र पधराये। द्वितीय* छत्र दिय तृतिये, तुरिय-हरि, मुद धरि चमर ढुराये। शेषचक्र जयशब्द करत नभ, लंघ सुराचल छाये। पांडुशिला जिन थाप नची सचि दुन्दभिकोटिक वाजै। वारी० ॥ ४ ॥ पुनि सुरेशने श्रीजिनेशको, जन्मन्हवन शुभ ठानो। हेमकुम्भ सुरहाथहिं हाथन, क्षीरोदधिजल आनो। वदनउदरअवगाह एक चौ, वसु योजन परमानो। सहसआठकर करि हरि जिनसिर, ढारत जयधुनि गाजै। वारी० ॥ ५ ॥ फिर हरिनारि सिगार स्वामितन, जजे सुरा जस गाये। पूरवली विधिकर पयान मुद, ठान पिता घर लाये। मनिमय आंगनमें कनकासन,-पै श्रीजिन पधराये। तांडव नृत्य कियो सुरनायक, शोभा सकल समाजै। वारी० ॥ ६ ॥ फिर हरि जगगुरुपितर तोप शान्तेश घो[11] जिन नामा। पुत्र जन्म उत्साह नगरमें, कियौ भूप अभिरामा। साध सकल निजनिजनियोग सुर,-असुर गये निजधामा। त्रिपदधारि जिनचारुचरनकी, दौलत करत सदा, जै। वारी० ॥ ७ ॥

---

* ऐशान इन्द्र। २ सानत्कुमार और माहेन्द्र। ३ बाकीके सब इन्द्र। ४ सुमेरु। ५ इन्द्राणी। ६ सोनेके कलशोंके मुख एक योजन, उदर चार योजन और—गहराई आठ योजन थी। ७ इन्द्राणी। ८ पूर्वकी। ९ जिन भगवानके पिताकी स्तुति करके। १० शान्तिनाथनाम। ११ घोषणा करके। १२ तीर्थंकरत्व, चक्रवर्तित्व और कामदेवत्व इन तीन पदोंके धारी।

५७

हे जिन तेरो सुजस उजागर, गावत हैं मुनिजन ज्ञानी । हे जिन० ॥ टेक ॥ दुर्जय मोह महाभट जाने, निजवश कीने जगप्रानी, सो तुम ध्यानकृपान पानिगहि, ततछिन ताकी थिति भानी । हे जिन० ॥ १ ॥ सुप्त अनादि अविद्या निद्रा, जिन जन निजसुधि विसरानी । है सचेत तिन निजनिधि पाई, श्रवन सुनी जब तुम वानी । हे जिन० ॥ २ ॥ मंगलमय तू जगमें उत्तम, तुही शरन शिवमगदानी । तुवपद-सेवा परम औषधि, जन्मजरामृतगदहानी* । हे जिन० ॥ ३ ॥ तुमरे पंच कल्यानकमाहीं, त्रिभुवन मोददशा ठानी, विष्णु विदम्बर, जिष्णु, दिगम्बर, बुध, शिव कह ध्यावत ध्यानी । हे जिन० ॥ ४ ॥ सर्व दर्वगुनपरजयपरनति, तुम सुबोधमें नहिं छानी । तातैं दौल दास उर आशा, प्रगट करो निज-रससानी, हे जिन० ॥ ५ ॥

५८

हे मन तेरी को कुटेव यह, करनेविषयमें धावै है, हे मन० ॥ टेक ॥ इनहीके वश तु अनादितैं निजस्वरूप न लखावै है । पराधीन छिन छीन समाकुल, दुर्गति

---

* जन्ममरणजरारूपी रोग । २ इन्द्रियोंके विषयमें ।

विपंति चखावै है । हे मन० ॥ १ ॥ फरस विषयके कारन वारन, गैरत परत दुख पावै है । रसनाइन्द्रीवश झष जलमें कंटक कंठ छिदावै है । हे मन० ॥ २ ॥ गन्धलोल पंकज मुद्रितमें, अलि निज प्रान खपावै है । नयनविषयवश दीपशिखामें, अंग पतंग जरावै है । हे मन० ॥ ३ ॥ करनविषयवश हिरन अरनमें, खलकर प्रान लुनावै है । दौलत तज इनको जिनको भज, यह गुरु सीख सुनावै है । हे० ॥४ ॥

७९

हो तुम शठ अविचारी जियरा, जिनवृष पाय वृथा खोवत हो । हो तुम० ॥ टेक ॥ पी अनादि मदमोहस्वगुननिधि, भूल अचेत नींद सोवत हो । हो तुम० ॥ १ ॥ स्वहित सीखवच सुगुरु पुकारत, क्यों न खोल उर-दृग जोवत हो । ज्ञान बिसार विषयविष चाखत, सुरतरु जारि कनक बोवत हो ॥ हो तुम० ॥ २ ॥ स्वारथ सगे सकल जनकारन, क्यों निज पापभार ढोवत हो । नरभव सुकुल जैनवृष नौका, लहि निज क्यों भवजल डोवत हो ।॥ ३ ॥ पुण्यपापफल वातव्याधिवश, छिनमें हँसत छिनक रोवत

* हाथी । २ गढेमें । ३ मछली । ४ बंदकमलमें । ५ कानके विषयसे । ६ वनमें । ७ जिनधर्म । ८ हियेकी आंख । ९ कल्पवृक्ष को जलाकर । १० धतूरा ।

हो । संयमसलिल लेय निज उरके, कलिमल क्यों न दौल धोवत हो । हो तुम० ॥ ४ ॥

६०

हो तुम त्रिभुवनतारी हो जिन जी, मो भवजलधि क्यों न तारत हो । टेक । अंजन कियौ निरंजन तातैं, अधमउधार विरद धारत हो । हरि वराह मर्कट झट तारे, मेरी वेर दौल पारत हो । हो तुम० ॥ १ ॥ यौं बहु अधम उधारे तुम तौ, मैं कहा अधम न मुहि टारत हो । तुमको करनो परत न कछु शिव,–पथ लगाय भव्यनि तारत हो । हो तुम० ॥ २ ॥ तुम छवि निरखत सहज टरैं अघ, गुण चितत विधि—रज झारत हो । दौल न और चहै मो दीजे, जैसी आप भावनारत हो । हो तुम० ॥ ३ ॥

६१

मान ले या सिख मोरी, झुकै मत भोगन ओरी । मान ले० ॥ टेक ॥ भोग भुंजंगभोगसम[1] जानो, जिन इनसे रति जोरी । ते अनन्त भव भीमैं[2] भरे दुख, परे अधोगति पोरी[3], बँधे दृढ पातकडोरी[4] ॥ मान० ॥ १ ॥ इनको त्याग विरागी जे जन, भये ज्ञानवृषधोरी । तिन सुख लह्यौ अचल अविनाशी, भवफांसी दई तोरी; रमैं तिनसंग शिवगोरी ।

---

१ सर्पके फणकी समान । २ भयानक । ३ पौर । ४ पापकी डोरमें ।

मान० ॥ २ ॥ भोगनकी अभिलाप हरनको, त्रिजगसंपदा थोरी। यातैं ज्ञानानंद दौल अब, पियो पियूष कटोरी; मिटै भवव्याधि कठोरी ॥ ३ ॥

६२

छांडि दे या बुधि भोरी, वृथा तनसे रति जोरी। छांडि ॥ टेक ॥ यह पर है न रहै थिर पोपत, सकल कुमलकी झोरी। यासौं ममता कर अनादितैं, बंधो कर्मकी डोरी, सहै दुख जलधि हिलोरी ॥ छांडि दे या बुधि भोरी। वृथा० ॥ १ ॥ यह जड है तू चेतन यौं ही, अपनावत बरजोरी। सम्यकदर्शन ज्ञान चरण निधि, ये हैं संपत तोरी, सदा विलसौ शिवगोरी ॥ छांडि दे या बुधि भोरी ॥ वृथा० ॥२॥ सुखिया भये सदीव जीव जिन, यासौं ममता तोरी। दौल सीख यह लीजे पीजे, ज्ञानपियूष कटोरी, मिटै परचाह कठोरी ॥ छांडि दे या बुधि भोरी ॥ वृथा० ॥ ३ ॥

६३

भाखूं हित तेरा, सुनि हो मन मेरा, भाखूं ॥ टेक ॥ नरनरकादिक चारौं गतिमें, भटक्यो तू अधिकानी। परपरनति में प्रीति करी निज परनति नाहिं पिछानी. सहै दुख क्यों न घनेरा ॥ भाखूं ॥१॥ कुगुरु कुदेव कुपंथ पंकफंसि,

तैं बहु खेद लहायो । शिवसुख देन दैन जगदीपक, सो तैं कबहुं न पायो, मिटयो न अज्ञान अंधेरा ॥ भाखूं० ॥ २ ॥ दर्शनज्ञानचरण तेरी निधि, सो विधिठगन ठगी है । पांचों इंद्रिनके विषयनमें, तेरी बुद्धि लगी है, भया इनका तू चेरा ॥ भाखूं० ॥ ३ ॥ तू जगजाल विषै बहु उरझ्यौ, अब कर ले सुरझेरा । दौलत नेमिचरनपंकजका हो तू भ्रमर सवेरा, नशै ज्यों दुख भवकेरा ॥ भाखूं० ॥ ४ ॥

६४

ऐसा मोही क्यों न अधोगति जावे, जाको जिनवानी न सुहावै । ऐसा० ॥ टेक ॥ वीतरागसे देव छोडकर, भैरव यक्ष मनावै । कल्पलता दयालुता तजि हिंसा इन्द्रायनि बोवै ॥ ऐसा० ॥ १ ॥ रुचै न गुरु निर्ग्रन्थभेष बहु,—परिग्रही गुरु भावे । परधन परतियको अभिलाषै, अशन अशोधित खावै ॥ ऐसा० ॥ २ ॥ परकी विभव देख है सोगी, परदुख हरख लहावै । धर्म हेतु इक दाम न खरचै, उपवन लक्ष बहावै ॥ ऐसा० ॥ ३ ॥ ज्यों गृहमें संचै बहु अघ त्यों, वनहूमें उपजावै । अम्बर त्याग कहाय दिगम्बर, बाघम्बर तन छावै ॥ ऐसा० ॥ ४ ॥ आरंभ तज शठ यंत्र मंत्र

---

१ कर्मरूपी ठगोंने । २ शीघ्र ही । ३ बोवे । ४ भोजन । ५ बिना शोधा हुआ । ६ दुखी । ७ बाग बनानेमें लाखों रुपये ।

करि, जनपै पूज्य बनावै । धाम वाम तज दासी राखै बाहिर मढ़ी बनावै ॥ ऐसा० ॥ ५ ॥ नाम धराय जती तपसी मन, विषयनिमें ललचावै । दौलत सो अनन्त भव भटकै, औरनको भटकावै ॥ ऐसा० ॥ ६ ॥

६५

ऐसा योगी क्यों न अभयपद पावै, सो फेर न भवमें आवै ॥ ऐसा० ॥ टेक ॥ संशय-विभ्रम मोह-विवर्जित, स्व-परस्वरूप लखावै । लख परमातम चेतनको पुनि, कर्मकलंक मिटावै ॥ ऐसा योगी० ॥ १ ॥ भवतनभोगविरक्त[1] होय तन, नग्न सुभेष बनावै । मोहविकार निवार निजातम,—अनुभवमें चित लावै ॥ ऐसा योगी० ॥ २ ॥ त्रस-थावर-बध त्याग सदा परमाददशा छिटकावै[2] । रागादिकवश झूठ न भाखै, तृणाहु न अदत गहावै ॥ ऐसा योगी० ॥ ३ ॥ बाहिर नारि त्यागि अंतर चिद्‌ब्रह्म सुलीन रहावै । परमाकिंचन धर्मसार सो, द्विविध प्रसंग[3] बहावै ॥ ऐसा योगी० ॥ पंच समिति त्रय गुप्ति पाल व्यवहार–चरनमग धावै । निश्चय सकलकषायरहित है, शुद्धातम थिर थावै ॥ ऐसा योगी० ॥५॥ कुंकुम पंक दास रिपु तृण मणि, व्याल माल सम भावै । आरत रौद्र कुध्यान बिडारे, धर्मशुकलको

---

१ संसार और देह भोगोंसे विरक्त । २ छिटका दिया । ३ दो प्रकारका परिग्रह

ध्यावै ॥ ऐसा योगी० ॥६॥ जाके सुखसमाज की महिमा, कहत इन्द्र अकुलावै ।दौल तासपद होय दास सो, अविचलऋद्धि लहावै ॥ ऐसा योगी० ॥ ७ ॥

६६

लखो जी या जिय भोरेकी बातैं, नित करत अहित हित घातैं । लखो जी० ॥ टेक ॥ जिन गनधर मुनि देशव्रती समकिती सुखी नित जातैं । सो पय ध्यान न पान करत न, अघातैं विषयविष खातैं । लखो० ॥ १ ॥ दुखस्वरूप दुखफलद जलदसम, टिकत न छिनक विलातैं । तजत न जगत भजत पतित नित, रचत न फिरत तहांतैं ॥ लखो० ॥ देह-गेह-धन-नेह ठान अति, अघ संचत दिनरातैं । कुगति विपतिफलकी न भीत, निश्चित प्रमाददशातैं ॥लखो० ॥३॥ कबहुं न होय आपनो पर, द्रव्यादि पृथक चतुघातैं । पै अपनाय लहत दुख शठ नैभै,-हतन चलावत लातैं ॥ लखो० ॥ ४ ॥ शिवगृहद्वार सार नरभव यह, लहि दश दुर्लभतातैं । खोवत ज्यों मनि काग उड़ावत, रोवत रंकपनातैं ॥लखो०॥ ॥ ५ ॥ चिदानन्द निर्द्वंद स्वपद तज अपद विपद-पैंद रातैं । कहत-सुशिखगुरु गहत नहीं उर, चहत न सुख समतातैं ॥ लखो ० ॥ ६ ॥ जैनवैन सुन भवि बहु भव हर,

---

१ तृप्त होता है । २ दुखरूप फल देनेवाला। ३ बादल। ४ द्रव्यक्षेत्रादि स्वचतुष्टयसे । ५ आकाशके घात करनेको । ६ विपतिस्थानमें तल्लीन ।

छूटे द्वंददशातैं। तिनकी सुकथा सुनत न मुनतै[1] न, आतम-बोधकलातैं॥ लखो० ॥७॥ जे जन समुझि ज्ञानदृगचारित, पावन पयवर्षातैं। तापविमोह हरयो तिनको जस, दौल त्रिभोन विख्यातैं॥ लखो०॥ ८ ॥

६७

सुनो जिया ये सतगुरुकी बातैं, हित कहत दयाल दयातैं। सुनो ॥ टेक ॥ यह तन आन अचेतन है तू, चेतन मिलत न यातैं। तदपि पिछान एक आतमको, तजत न हठ शठतातैं॥ सुनो० ॥ १ ॥ चहुंगति फिरत भरत ममताको, विषय महाविष खातैं। तदपि न तजत न रजैत[2] अभागे, दृगव्रतबुद्धि[3]-सुधातैं॥ सुनो० ॥ २ ॥ मात तात सुत भ्रात स्वजन तुझ, साथी स्वारथ नातैं। तू इन काज साज गृहको सब, ज्ञानादिक मत घातै॥ सुनो० ॥ ३ ॥ तन धन भोग संजोग सुपनसम, वार न लगत विलातैं। ममत न कर भ्रम तज तू भ्राता, अनुभव-ज्ञान कलातैं॥ सुनो० ॥ ४ ॥ दुर्लभ नर-भव सुथल सुकुल है, जिन उपदेश लहा तैं। दौल तजो मन-सौं ममता ज्यों, निवडो द्वंद दशातैं॥ सुनो० ॥ ५ ॥

---

१ मनन नही करता। २ रंजायमान। ३ दर्शनज्ञान चारित्ररूपी अमृतसे।

६८

मोही जीव भरमतमतैं नहिं, वस्तुस्वरूप लखै है जैसैं । मोही० ॥ टेक ॥ जे जे जड़ चेतनकी परनति, ते अनिवार[1] परनवै वैसैं[2] । वृथा दुखी शठ कर विकलपै यौं, नहि परिनै परिनवैं ऐसैं[3] ॥ मोहि० ॥ १ ॥ अशुचि सरोग समल जड़मूरत, लखत विलात गगनघन जैसैं । सो तन ताहि निहार अपनपो, चहत अबाध रहै थिर कैसैं ॥ मोहि० ॥ २ ॥ सुत-तिय-बंधु-वियोगयोग यौं, ज्यौं सराय जन निकसैं[4] पैसैं[5] ॥ विलखत हरखत शठ अपने लखि, रोवत हँसत मत्तजन जैसैं ॥ मोहि० ॥ ३ ॥ जिन-रवि-वैन किरन लहि जिन निज रूप सुभिन्न कियौ परमैसैं ॥ सो जगमौल दौलको चिर थित मोहविलास निकास हृदैसैं ॥ मोहि० ॥ ४ ॥

६९

ज्ञानी जीव निवार भरमतम, वस्तुस्वरूप विचारत ऐसैं । ज्ञानी० ॥ टेक ॥ सुत तिय बंधु धनादि प्रगट पर, ये मुझतैं हैं भिन्नप्रदेशैं । इनकी परनति है इन आश्रित, जो इन भाव परनवैं वैसैं ॥ ज्ञानी० ॥ १ ॥ देह अचेतन चेतन मैं इन प-

---

१ जिसका निवारन नहीं होसकता । २ जैसा परिणमन होना चाहिये वैसा । ३ इसप्रकार नहीं परिणमै किन्तु इसप्रकार अपनी इच्छानुसार परिणमैं । ४ निकलें । ५ प्रवेश करें ।

रनति होय एकसी कैसैं । पूरनगलन स्वभाव धरै तन, मैं अज अचल अमल नभ जैसैं ॥ ज्ञानी० ॥ २ ॥ पर परिनमन न इष्ट अनिष्ट न वृथा रागरुष द्वंद्व भयेसैं । नसै ज्ञान निज फसैं बंधमें, मुक्त होय समभाव लयेसैं ॥ ज्ञानी० ॥ ३ ॥ विषयचाहदवदाह नसै नहिं, विन निज सुधासिंधुमें पैसैं । अब जिनवैन सुने श्रवननतैं, मिटे विभाव करूं विधि तैसैं ॥ ज्ञानी ॥ ४ ॥ ऐसो अवसर कठिन पाय अब, निजहित हेत विलम्ब करेसैं । पछताओ बहु होय सयाने, चेतन दौल छुटो भव भैसैं ॥ ज्ञानी० ॥ ५ ॥

९०

अपनी सुधि भूल आप, आप दुख उपायौ, ज्यौं शुक नभचाल विसरि नलिनी लटकायो ॥ अपनी० ॥ टेक ॥ चेतन अविरुद्ध शुद्ध दरशबोधमय विशुद्ध, तजि जड-रस-फरस-रूप, पुद्गल अपनायौ । अपनी० ॥ १ ॥ इन्द्रियसुख-दुखमें नित्त, पाग रागरुखमें चित्त, दायकभवविपतिवृन्द, बन्धको वढायौ ॥ अपनी० ॥ २ ॥ चाहदाह दाहै, त्यागौ न ताह चाहै, समतासुधा न गाहै जिन, निकट जो बतायौ ॥ अपनी० ॥ ३ ॥ मानुषभव सुकुल पाय, जिनवरशासन लहाय, दौल निजस्वभाव भज, अनादि जो न ध्यायौ अपनी० ॥ ४ ॥

---

१ पूरण होने और गलन होनेरूप स्वभाववाला पुद्गल होता है ।

७१

जीव तू अनादिहीतैं भूल्यौ शिवगैलवा[1]। जीव०॥ टेक। मोहमदवार पियौ, स्वपद विसार दियौ, पर अपनाय लियौ इन्द्रिसुखमें रचियौ, भवतैं न भियौ न तजियौ मनमैलवा। जीव०॥ १॥ मिथ्या ज्ञान आचरन, धरि कर कुमरन, तीन लोककी धरन, तामें कियो है फिरन, पायो न शरन न लहायौ सुखशैलवा। जीव०॥ २॥ अब नरभव पायौ, सुथल सुकुल आयौ, जिन उपदेश भायौ, दौल झट छिटकायौ, परपरनति दुखदायिनी चुरैलवा[2]। जीव०॥३॥

७२

आपा नहिं जाना तूने[3], कैसा ज्ञानधारी रे॥ टेक। देहाश्रित करि क्रिया आपको, मानत शिवमगचारी रे। आपा०॥ १॥ निजनिवेंदविन[4] घोर परीसह विफल कही जिन सारी रे। आपा॥ २॥ शिव चाहै तो द्विविधकर्मतैं[5], कर निजपरनति न्यारी रे। आपा०॥ ३॥ दौलत जिन निजभाव पिछान्यौ तिन भवविपति विदारी रे। आ०॥४॥

---

१ मोक्षका मार्ग। २ चुड़ैल। ३ 'न पिछाना' ऐसा भी पाठ है। ४ अपनी आत्माका स्वरूप जाने विना। ५ द्विविधकर्म कर ऐसा भी पाठ है।

७३

शिवपुरकी डगर समरससौं भरी, सो विषयविरसरचि चिरविसरी । शिव० ॥ टेक ॥ सम्यकदरश-बोध-व्रतमय भव, दुखदावानल-मेघझरी । शिवपुर० ॥ १ ॥ ताहि न पाय तपाय देह बहु,-जनममरन करि विपति भरी । काल पाय जिनधुनि सुनि मैं जन, ताहि लहूं सोई धन्य घरी ॥ शिव० ॥ २ ॥ ते जन धनि या मांहि चरत नित, तिन कीरति सुरपति उचरी । विषयचाह भवराह त्याग अब, दौल हरो रजरहसिअरी ॥ शिवपुर ॥ ३ ॥

७४

तोहि समझायो सौ सौ बार, जिया तोहि समझायो० ॥ टेक ॥ देख सुगुरुकी परहितमें रति, हित उपदेश सुनायो । सौ सौ बार० ॥ १ ॥ विषयभुजंग सेय सुख पायो पुनि तिनसौं लपटायो । स्वपदविसार रच्यौ परपदमें, मदरत ज्यौं बोरायो । सौ सौ बार० ॥ २ ॥ तन धन स्वजन नहीं हैं तेरे, नाहक नेह लगायो । क्यों न तजै भ्रम चाख

---

२ मार्ग । ३ चारघातिया कर्म । ४ शराबी-मदप ।

समामृत, जो नित संतसुहायो ॥ सौ सौ बार० ॥३॥ अबहू समझ कठिन यह नरभव जिनें वृष बिना गमायो । ते बिलखें मनि डार उदधिमें, दौलतको पछतायो ॥ सौ सौ० ॥ ४ ॥

७५

न मानत यह जिय निपट अनारी । सिख देत सुगुरु हितकारी ॥ मानत० ॥ ॥ टेक ॥ कुमतिकुनारि संग रति मानत, सुमतिसुनारि बिसारी ॥ न मानत० ॥ १ ॥ नर-परजाय सुरेश चहैं सो, चजि विषविषय बिगारी । त्याग अनाकुल ज्ञान चाह पर-आकुलता विसतारी ॥ न मानत० ॥ २ ॥ अपना भूल आप समतानिधि, भवदुख भरत भिखारी । परद्रव्यनकी परनतिको शठ, वृथा बनत करतारी ॥ न मानत० ॥ ३ ॥ जिस कषाय-दव जरत तहां अभि-लाप छटा घृत डारी । दुखसौं डरै करै दुखकारन,-तैं नित प्रीति करारी ॥ न मानत० ॥ ४ ॥ अतिदुर्लभ जिनवैन श्रवनकरि, संशयमोह निवारी । दौल स्वपर-हित-अहित जानके, होवहु शिवमगचारी ॥ न मानत० ॥ ५ ॥

७६

हे नर, भ्रमनींद क्यों न, छांड़त दुखदाई । सेवत चिर-

---

१ समतारूपी अमृत । २ जिन्होंने । ३ धर्म । ४ पुद्गल सम्बंधी । ५ कर्ता । ६ गाढी ।

काल सोंज, आपनी ठगाई । हे नर० ॥ टेक ॥ मूरख अघ कर्म कहा, भेदै नहिं मर्म लहा, लागै दुखज्वालकी न, देह-कै तताई ॥ हे नर० ॥ १ ॥ जमके रव बाजते, सुभैरव अ-ति गाजते, अनेक प्रान त्यागते, सुनै कहा न भाई ॥हे नर ॥ २ ॥ परको अपनाय आप,-रूपको भुलाय हाय, करन-विषय दारु जार, चाहदौं बढ़ाई ॥ हे नर० ॥ ३ ॥ अब सुन जिनबान, राग द्वेषको जघान, मोक्षरूप निज पिछान दौल, भज विरागताई ॥ हे नर० ॥ ४ ॥

७७

प्रभु थारी आज महिमा जानी । प्रभु थारी० ॥ टेक । अबलौं मोह महामद पिय मैं, तुमरी सुधि विसरानी । भाग जगे तुम शांति छवी लखि, जडता नींद विलानी ॥ प्रभु० ॥ १ ॥ जगविजयी दुखदाय रागरुष, तुम तिनकी थिति भानी । शांतिसुधासागर गुन आगर, परमविराग विज्ञानी। प्रभु० ॥ २॥ समवसरन अतिशय कमलाजुत, पै निर्ग्रन्थ नि-दानी । क्रोधविना दुठ मोहविदारक, त्रिभुवनपूज्य अमानी। प्रभु० ॥ ३ ॥ एकस्वरूप सकलज्ञेयाकृत, जग-उदास जग-ज्ञानी । शत्रुमित्र सबमें तुम सम हो, जो दुखसुख फल यानी । प्रभु० ॥ ४ ॥ परम ब्रह्मचारी है प्यारी, तुम हेरी शिवरानी । है कृतकृत्य तदपि तुम शिवमग, उपदेशक

---

१ 'मुद्गर अघ करम स्वान भेदै नहिं मरमथान' ऐसा भी पाठ है ।

भगवानी ॥५॥ भई कृपा तुमरी तुममें तैं, भक्ति सु मुक्ति निशानी । है दयाल अब देहु दौलको, जो तुमने कृति ठानी ॥

७८

तुम सुनियो श्रीजिननाथ, अरज इक मेरी जी । तुम० ॥ टेक ॥ तुम विन हेत जगत उपकारी, वसुकर्मन मोहि किया दुखारी, ज्ञानादिक निधि हरी हमारी, द्यावो सो मम फेरी जी ॥ तुम सुनि० ॥ १ ॥ मैं निज भूल तिनहि संग लाग्यो, तिन कृत करन विषय रस पाग्यो, तातैं जन्म-जरा दव-दाग्यो, कर समता सम नेरी जी ॥ तुम सु० ॥ २ ॥ वे अनेक प्रभु मैं जु अकेला, चहुंगति विपतिमाहिं मोहि पेला, भाग जगे तुमसौं भयो भेला, तुम हो न्यायनिवेरी जी । तुम सु० ॥ ३ ॥ तुम दयाल वेहाल हमारो, जगतपाल निज विरद सम्हारो, ढील न कीजे वेग निवारो, दौलतनी भवफेरी जी ॥ तुम सु० ॥ ४ ॥

७९

अरे जिया, जग धोखेकी टाटी । अरे० ॥ टेक ॥ झूठा उद्यम लोक करत हैं, जिसमें निशदिन घाटी ॥ अरे० ॥ १ ॥ जान बूझके अन्ध बने हैं, आंखन बांधी पाटी । अरे० ॥ २ ॥ निकल जांयगे प्राण छिनकमें, पड़ी रहैगी माटी । अरे ॥ ३ ॥ दौलतराम समझ मन अपने, दिलकी खोल कपाटी ॥ ४ ॥

८०

हम तो कबहूँ न हित उपजाये । सुकुल-सुदेव-सुगुरु-सुसंग हित, कारन पाय गमाये ! हम तो० ॥ टेक ॥ ज्यों शिशु नाचत, आप न माचत, लखनहार बौराये । त्यों श्रुत वांचत आप न राचत, औरनको समुझाये ॥ हम तो० ॥ १ ॥ सुजस-लाहकी चाह न तज निज, प्रभुता लखि हरखाये । विषय तजे न रँजे निज पदमें, परपद अपद लुभाये ॥ हम तो० ॥ २ ॥ पापत्याग जिन-जाप न कीन्हौं, सुमनचाप-तप ताये । चेतन तनको कहत भिन्न पर, देह सनेही थाये । हम तो० ॥ ३ ॥ यह चिर भूल भई हमरी अब कहा होत पछताये । दौल अजौं भवभोग रचौ मत, यौं गुरु वचन सुनाये ॥ हम तो० ॥ ४ ॥

८१

हम तो कबहुं न निजगुन भाये । तन निज मान जान तनदुखसुख-में विलखे हरखाये । हम तो० ॥ टेक ॥ तनको मरन मरन लखि तनको, धरन मान हम जाये । या भ्रम-भौंर परे भवजल चिर, चहुंगति विपत लहाये ॥ हम तो० ॥ १ ॥ दरशबोधव्रतसुधा न चाख्यौ, विविध विषय-विष खाये । सुगुरु दयाल सीख दइ पुनि पुनि, सुनि सुनि उर

---

१ मग्न होते । २ शास्त्र पढ़ते । ३ सुयशके लाभ की । ४ रचे-मग्न हुए
५ जिनदेवका जपन । ६ सुमनचाप अर्थात् कामदेवकी तपनमें तप्त ।
७ भावना की । ८ उत्पन्न हुए ।

नहिं लाये ॥हम तो० ॥ २ ॥ बहिरातमता तजी न अन्तर-दृष्टि न है निज ध्याये । धाम-काम-धन-रामाकी नित, आश[1]-हुताश जलाये ॥ हम तो० ॥ ३ ॥ अचल अनूप शुद्ध चिद्रूपी, सब सुखमय मुनि गाये । दौल चिदानँद स्वगुन मगन जे, ते जिय सुखिया थाये ॥ हम तो० ॥ ४ ॥

८२

हम तो कबहुं न निज घर आये । परघर फिरत बहुत दिन बीते, नाम अनेक धराये ॥ हम तो० ॥ टेक ॥ परपद निजपद मानि मगन ह्वै, परपरनति लपटाये । शुद्ध बुद्ध सुख कन्द मनोहर, चेतन भाव न भाये ॥ हम तो० ॥ १ ॥ नर पशु देव नरक निज जान्यो, परजय बुद्धि कहाये । अमल अखण्ड अतुल अविनाशी, आतमगुन नहिं गाये ॥ हम तो० ॥ २ ॥ यह बहु भूल भई हमरी फिर, कहा काज पछताये । दौल तजो अजहूं विषयनको, सतगुरु वचन सुनाये ॥ हम तो० ॥ ३ ॥

८३

मानत क्यों नहिं रे, हे नर सीख सयानी । भयौ अचेत मोह-मद पीके, अपनी सुधि बिसरानी ॥ टेक ॥ दुखी अनादि कुबोध[2] अव्रततैं[3], फिर तिनसौं रति ठानी । ज्ञानसुधा नि-

---

१ आशारूपी अग्निमें । २ मिथ्यात्वसे । ३ मिथ्या चारित्रसे ।

जभाव न चाख्यौ, परपरनति मति सानी ॥ मानत० ॥ १॥ भव असारता लखै न क्यों जहँ नृप है कृमि[1] विट-थानी[2] । सधन निधन नृप दास स्वजन रिपु, दुखिया हरिसे[3] मानी ॥ मानत० ॥ २ ॥ देह एह गँद-गेह नेह इस, है बहु विपति निशानी । जड मलीन छिनछीन करमकृत,—वन्धन शिवसुखहानी । मानत० ॥ ३ ॥ चाहज्वलन ईंधन-विधि-वन-घन, आकुलता कुलखानी । ज्ञान-सुधा-सर-शोषन रवि ये, विषय अमित मृतुदानी । मानत० ॥ ४ ॥ यों लखि भव-तन-भोग विरचि करि, निजहित सुन जिनवानी । तज रुपराग दौल अब अवसर, यह जिनचन्द्र वखानी । मानत० ॥ ५ ॥

८४

जानत क्यों नहिं रे, हे नर आतमज्ञानी । जानत० ॥ टेक ॥ रागदोष पुद्गलकी संपति, निहचै शुद्धनिशानी । जानत० ॥ १ ॥ जाय नरकपशुनरसुरगतिमें, यह परजाय विरानी । सिद्धसरूप सदा अविनाशी, मानत विरले प्रानी ॥ जानत० ॥ २ ॥ कियो न काहू हरै न कोई, गुरु—शिख कौन कहानी । जनममरनमलरहित विमल है, कीचविना जिमि

---

१ कीट । विष्ठाके स्थानमें । ३ कृष्णनारायण सरीखे । ४ रोगका घर । ५ मृत्यु ।

पानी ॥ जानत० ॥ ३ ॥ सार पदारथ है तिहुं जगमें, नहिं क्रोधी नहिं मानी । दौलत सो घटमाहिं विराजे, लखि हूजे शिवथानी ॥ जानत० ॥ ४ ॥

८५

हे हितवांछक प्रानी रे, कर यह रीति सयानी । हे हित ॥ टेक ॥ श्रीजिनचरन चितार धार गुन, परम विराग विज्ञानी । हे हित० ॥ १ ॥ हरन भयामय[1] स्वपरदयामय, सरधौ[2] वृष[3] सुखदानी । दुविध उपाधि बाध शिवसाधक, सुगुरु भजौ गुणथानी । हे० ॥२ ॥ मोह-तिमिर-हर मिहिर[4] भजो श्रुत स्यात्पद जास निशानी । सप्ततत्त्व नव अर्थ, विचारहु, जो वरनै जिनवानी । हे हित० ॥ ३ ॥ निज पर भिन्न पिछान मान पुनि होहु, आप सरधानी । जो इनको विशेष जानन सो, ज्ञायकता मुनि मानी । हे हित० ॥ ४ ॥ फिर व्रत समिति गुपति सजि, अरु तजि प्रवृति शुभास्रवदानी । शुद्ध स्वरूपाचरन लीन है, दौल वरौ शिवरानी । हे हित० ॥ ५ ॥

८६

आतम रूप अनूपम अद्भुत, याहि लखैं भव सिंधु तरो ।

---

१ डर और रोग । २ श्रद्धान करो । ३ धर्म । ४ सूर्य ।

आ० ॥ टेक ॥ अल्पकालमें भरत चक्रधर, निज आतमको ध्याय खरो। केवलज्ञान पाय भवि बोधे, ततछिन पायौ लोक[1]शिरो ॥ आ० ॥ १ ॥ या बिन समुझे द्रव्यलिंगिमुनि, उग्र[2] तपनकर भार भरो। नवग्रीवकपर्यन्त जाय चिर, फेर भ[3]वार्णवमाहिं परो ॥ आत० ॥ २ ॥ सम्यग्दर्शन ज्ञान चरन तप, येहि जगतमें सार नरो। पूरब शिवको गये जाहिं अब, फिर जैहैं यह नियत करो ॥ आ० ॥ ३ ॥ कोटि ग्रन्थको सार यही है, ये ही जिनवानी उचरो। दौल ध्याय अपने आतमको, मुक्तिरमा तब वेग वरो ॥ आ० ४ ॥

८७

आप भ्रमविनाश आप जाप जान पायो, कर्णधृत सुवर्ण जिमि चितार चैन थायो। आप० ॥ टेक ॥ मेरो तन तनमय तन, मेरो मैं तनको त्रिकाल यों कुबोध नश सुबोधभान जायो ॥ आप० ॥ १ ॥ यह सुजैनबैन ऐन, चिंतन पुनि पुनि सु[6]नैन, प्रगटो अब भेद निज[7], निर्वेदगुन बढायो। ॥ आप० ॥ २ ॥ यों ही चित अचित मिश्र, ज्ञेय ना अहेय हेय, इंधन धनंज[8] जैसे, स्वामियोग[9] गायो। आप० ॥ ३ ॥ भंमर पोत[10] छुटत झ[11]टति, बांछित तट निकटत जिमि, मोद

१ मोक्षशिखर = सिद्धशिला। २ घोर। ३ भवसमुद्रमें। ४ हे पुरुषो। ५ निश्चय। ६ सुनयोंसे। ७ आत्मज्ञान। ८ अग्नि। ९ उत्तम योग। १० जहाज। ११ शीघ्र ही।

रागरुख हर जिय, शिवतट निकटायौ। आप० ॥ ४ ॥ विमल सौख्यमय सदीव, मैं हूं मैं नहिं अजीव, जोत होत रज्जुमय, भुजंग भय भगायौ। आप० ॥ ५ ॥ यौं ही जिनचंद सुगुन, चिंतत परमारथ गुन, दौल भाग जागो जब, अल्पपूर्व आयौ ॥ आप० ॥ ६ ॥

८८

विषयोंदा[2] मद भानै, ऐसा है कोई वे ॥ टेक ॥ विषय दुःख अर दुखफल तिनको, यौं नित चित्त न ठानै। विषयोंदा० ॥ १ ॥ अनुपयोग उपयोग स्वरूपी, तनचेतनको मानै। विषयोंदा० ॥ २ ॥ वरनादिक रागादि भावतैं, भिन्न रूप तिन जानैं। विषयोंदा० ॥ ३ ॥ स्वपर जान रुषराग हान, निजमें निज परनति सानै। विषयोंदा० ॥ ४ ॥ अन्तर बाहरको परिग्रह तजि, दौल वसै शिवथानै। विषयोंदा० ॥ ५ ॥

८९

और सबै जगद्वन्द मिटावो, लो लावो जिन आगम-ओरी। और० ॥ टेक ॥ है असार जगद्वन्द्व बन्धकर, यह कछु गरज न सारत तोरी। कमला[3] चपला[4], यौवन सुरधनु[5], स्वजन पथिकजन क्यों रति जोरी ॥ और० ॥ १ ॥ विषय

---

२ विषयोंका (पंजाबी) ३ लक्ष्मी। ४ बिजली। ५ इन्द्रधनुष।

कषाय दुखद दोनों ये, इनतैं तोर नेहकी डोरी। परद्रव्यनको तू अपनावत, क्यों न तजै ऐसी बुधि भोरी ॥ और० ॥ ॥ २ ॥ बीत जाय सागरथिति सुरकी, नरपरजायतनी अति थोरी। अवसर पाय दौल अब चूको, फिर न मिलै मणि सागरबोरी ॥ और० ॥ ३ ॥

९७

और अबै न कुदेव सुहावैं, जिन थाके चरनन रति जोरी। और० ॥ टेक ॥ कामकोहवश गहैं अशन असि अंक[1] निशंक धरैं तिय गोरी। औरनके किम भाव सुधारैं, आप कुभाव-भारधर-धोरी। और० ॥ १ ॥ तुम विनमोह अकोहछोहविन[2], छके शांत रस पीय कटोरी। तुम तज सेयैं[3] अमेय[4] भरी जो, जानत हो विपदा सब मोरी। और० ॥ ॥ २ ॥ तुम तज तिनै भजै शठ जो सो दाख न चाखत खात निमोरी। हे जगतार उधार दौलको, निकट विकट भवजलधि हिलोरी[5] ॥ और० ॥ ३ ॥

९८

कबधौं मिलै मोहि श्रीगुरु मुनिवर, करि हैं भवोदधि पारा हो। कबधौं० ॥ टेक ॥ भोगउदास जोग जिन लीनों,

---

१ गोदमें। २ क्रोध क्षोभ रहित। ३ सेवा। ४ अपरिमाण। ५ भवसमुद्रकी लहरें।

न्त्रादि परिग्रहभारा हो । इन्द्रिय दमन वमन मद कीनो, विषय कषाय निवारा हो ॥ कबधौं० ॥ १ ॥ कंचन काच बराबर जिनके, निंदक वंदक सारा हो । दुर्धर तप तपि सम्यक निज घर, मनवचतनकर धारा हो । कबधौं० ॥ ॥ २ ॥ ग्रीषम गिरि हिम सरितातीरैं, पावस तरुतर ठारा हो । करुणाभीने चीन त्रसथावर, ईर्यापंथ समारा हो । कबधौं० ॥ ३ ॥ मार मार व्रत धार शील दृढ, मोह महामल टारा हो । मास छमास उपास वास वन, प्रासुक करत अहारा हो ॥ कबधौं० ॥ ४ ॥ आरतरौद्रलेश नहिं जिनके, धर्म शुकल चित धारा हो । ध्यानारूढ गूढ निज आतम, शुधउपयोग विचारा हो ॥ कबधौं० ॥ ५ ॥ आप तरहिं औरनको तारहिं, भवजलसिंधु अपारा हो । दौलत ऐसे जैनजतिनको, नितप्रति धोक हमारा हो ॥ कबधौं० ॥ ६ ॥

९२

कुमति कुनारि नहीं है भली रे, सुमति नारि सुंदर गुनवाली, कुमति० ॥ टेक ॥ वासौं विरचि रचौ नित यासौं, जो पावो शिवधाम गली रे । वह कुबजा दुखदा यह राधा,

१ एकसे । २ 'लीन' ऐसा भी पाठ है । ३ कामदेवको मारकर । ४ " धर तप तपि समकित गहि निज चित, करि मनवचन सारा हो, मासमास उपवास वासवन " ऐसा भी पाठ है । ५ आर्तध्यान । ६ रौद्रध्यान । ७ धर्मध्यान । ८ शुक्लध्यान ।

बाधा टारन करन रली रे ॥ कुमति० ॥ १ ॥ वह कारी परसौं रति ठानत, मानत नाहिं न सीख भली रे। यह गोरी चिद्गुण सहचारिनि, रमत सदा स्वसमाधि-थली रे ॥ कुमति० ॥ ॥ २ ॥ वा संग कुथल कुयोनि बस्यौ नित, तहां महादुख-वेल फली रे। या संग रसिक भविनकी निजमें, परिनति दौल भई न चली रे ॥ कुमति० ॥ ३ ॥

९३

गुरु कहत सीख इमि वार वार, विषसम विषयनको टार टार ॥ गुरु० ॥ टेक ॥ इन सेवत अनादि दुख पायो, जनम मरन वहु धार धार। गुरु० ॥ १ ॥ कर्माश्रित बाधा-जुत फांसी, वन्ध बढावन द्वंदकार। गुरु० ॥ २ ॥ ये न इन्द्रिके तृप्तिहेतु जिमि, तिस न बुझावत क्षारवार। गुरु० ॥ ॥ ३ ॥ इनमें सुख कलपना अबुधके, बुधजन मानत दुख प्रचार। गुरु० ॥ ४ ॥ इन तजि ज्ञानपियूष चख्यौ तिन, दौल लही भववार पार। गुरु० ॥ ५ ॥

९४

घडि घडि पल पल छिन छिन निशदिन, प्रभुजीका सुमरन करले रे। घडि० ॥ टेक ॥ प्रभु सुमिरेतैं पाप कटत हैं, जनममरनदुख हरले रे ॥ घडि घडि० ॥ १ ॥ मनवच-

---

१ ज्ञान गुण सहचारिणी। २ फिर चलायमान न हुई। ३ तृषा-प्यास। ४ खारा पानी।

काय लगाय चरन चित, ज्ञान हिये विच धर ले रे । घड़ि घड़ि० ॥ २ ॥ दौलतराम, धर्मनौका चढ़ि, भवसागरतैं तिर ले रे ॥ घड़ि घड़ि० ॥ ३ ॥

१५

चिन्मूरत दृग्धारीकी मोहि, रीति लगत है अटापटी[१] । चिन्मू० ॥ टेक ॥ बाहिर नारकिकृत दुख भोगै, अंतर सुखरस गटागटी । रमत अनेक सुरनि संग पै तिस, परनतितैं नित हटाहटी ॥ चिन्मू० ॥ १ ॥ ज्ञानविरागशक्तितैं विधिफल, भोगत पै विधि घटाघटी । सदननिवासी तदपि उदासी तातैं आस्रव छटाछटी ॥ चिन्मू० ॥ २ ॥ जे भवहेतु अबुधके ते तस, करत बन्धकी झटाझटी । नारक पशु तिय षंढ विकलत्रय, प्रकृतिनकी ह्वै कटाकटी ॥ चिन्मू० ॥ ३ ॥ संयम धर न सकै पै संयम, धारनकी उर चटाचटी । तासु सुयश गुनकी दौलतके लगी, रहै नित रटारटी ॥ चिन्मू० ॥ ४ ॥

१६

चेतन यह बुधि कौन सयानी; कही सुगुरु हित सीख न मानी ॥ टेक ॥ कठिन काकतालीं ज्यौं पायौ, नरभव सुकुल श्रवण जिनवानी । चेतन० ॥ १ ॥ भूमि न होत

१ खटपटी । २ दरपना । ३ कर्मफल । ४ न्यूनपना । ५ नपुंसक । ६ काकतालीय न्यायसे अर्थात् जैसे ताड़वृक्षसे ताड़फलका टूटना और कागका उसके नीचे दबकर मरजाना कठिन है वैसे

चादनीकी ज्यौं, त्यौं नहिं धनी ज्ञेयको भ्रानी। वस्तुरूप यौं तू यौं ही शठ, हटकर पकरत सोंज विरानी ॥ चेतन० ॥ २ ॥ ज्ञानी होय अज्ञान राग रुष-कर निज सहज स्वच्छता हानी। इन्द्रिय जड तिन विषय अचेतन, तहां अनिष्ट इष्टता ठानी ॥ चेतन० ॥ ३ ॥ चाहै सुख, दुख ही अवगाहै, अब सुनि विधि जो है सुखदानी। दौल आपकरि आप आपमैं, ध्याय ध्याय लय समरससानी ॥ चेतन० ॥ ४ ॥

९७

चेतन कौन अनीति गही रे, न मानैं सुगुरु कही रे। चेतन० ॥ जिन विषयनवश बहु दुख पायो, तिनसौं प्रीति ठही रे। चेतन० ॥ १ ॥ चिन्मय है देहादि जड़नसौं तो मति पागि रही रे। सम्यग्दर्शनज्ञान भाव निज तिनकौं गहत नहीं रे ॥ चेतन० ॥ २ ॥ जिनवृष पाय विहाय रागरुष, निजहित हेत यही रे। दौलत जिन यह* सीख धरी उर, तिन शिव सहज लही रे ॥ चेतन० ॥ ३ ॥

९८

चेतन तैं यौं ही भ्रम ठान्यो, ज्यों मृग मृगतृष्णा जल जान्यो। चेतन० ॥ टेक ॥ ज्यौं निशितममैं निरख जेवरी,

* 'निजसुधासुरुचि गहि' ऐसा भी पाठ है।

भुजग मान नर भय घर आन्यो। चेतन०। १। ज्यों कुध्या-न वश पहिप मान निज, फँसि नर उरमाहीं अकुलान्यो। त्यों चिर मोह अविद्या पेरयो, तेरो तैं ही रूप भुलान्यो॥ चेतन०॥ २॥ तोय तेल ज्यों मेल न तनको, उपज खपैंमें सुखदुख पान्यो। पुनि परभावनको करता है, तैं तिनको निज कर्म पिछान्यो॥ चेतन०॥ ३॥ नरभव सुथल सुकुल जिनवानी, काललब्धि बल योग मिलान्यो। दौल सहज भज उदासीनता तोषै-रोष दुखकोष जु भान्यो॥ चेतन०॥ ४॥

९९

चेतन अब धरि सहजसमाधि, जातैं यह विनशै भव-व्याधि। चेतन०॥ टेक॥ मोह ठगौरी खायके रे, परको आपा जान। भूल निजातम ऋद्धिको तैं, पाये दुःख महान॥ चेतन०॥ १॥ सादि अनादि निगोद दोयमें, परयो कर्मवश जाय। श्वासउसासमँझार तहां भव, मरन अठारह थाय॥ चेतन०॥ २॥ कालअनन्त तहां यों बीत्यो, जब भइ मन्द कषाय। भूजल अनिल अनल पुन तरु है, काल असंख्य गमाय॥ चेतन०॥ ३॥ क्रमक्रम निकसि कठिन तैं पाई, शंखादिक परजाय। जल थल खचर होय अघ ठाने, तस वश श्वभ्र लहाय॥ चेतन०॥ ४॥ तित सागरलों बहु

१ बिनाकर्मे। २ रागद्वेष ३ नष्ट किया। ४ वायुकाय। ५ अग्निकाय।

दुख पाये, निकस कबहुं नर थाय। गर्भ जन्मशिशु तरुणवृद्ध दुख, सहे कहे नहिं जाय। चेतन० ॥ ५ ॥ कबहूं किंचित पुण्यपाकतैं चउविधि देव कहाय। विषयआश मन त्रास लही तहं, मरन समय विललाय! चेतन० ॥ ६ ॥ यौं अपार भवखारवारमें, भ्रम्यो अनन्ते काल। दौलत अब निजभाव-नाव चढि, लै भवाब्धिकी पाल ॥ चेतन० ॥ ७ ॥

१००

जिनै[२] रागदोपत्यागा वह सतगुरु हमारा। जिन राग० ॥ टेक ॥ तज राजरिद्ध तृणवत निज काज सँभारा। जिन राग० ॥ १ ॥ रहता है वह वनखंडमें, धरि ध्यान कुठारा। जिन मोह महा तरुको, जडमूल उखारा ॥ जिन राग। २। सर्वांग तज परिग्रह दिगअंबर धारा। अनंतज्ञानगुनसमुद्र चारित्र भँडारा॥ जिन राग० ॥ ३ ॥ शुक्लाग्निको प्रजालके वसु कानन जारा। ऐसे गुरुको दौल है, नमोऽस्तु हमारा। जिन राग० ॥ ४ ॥

१०१

चिद्रायगुन सुनो मुनो प्रशस्त गुरुगिरा। समस्त तज विभाव, हो स्वकीयमें थिरा। चिद्० ॥ टेक ॥ निजभावके

२ यह पद दौलतरामजीका नहीं मालूम होता, इसका पाठ भी गड-बड है।

लब्धात्र विन, भवाब्धिमें परा । जामन मरन जरा त्रिदोष, अग्निमें जरा ॥ चिद० ॥ १ ॥ फिर सादि औ अनादि दो, निगोदमें परा । तंह अंकके असंख्यभाग, ज्ञान ऊबरा ॥ चिद० ॥ २ ॥ तहां भव अन्तर मुहूर्तके, कहे गनेश्वरा। छ्यासठ सहस त्रिशत छतीस, जन्म धर मरा ॥ चिद० ॥ ३ ॥ यौं वशि अनंतकाल फिर, तहांतें नीसरा । भूजल अनिल अनल प्रतेक, तरुमें तन धरा ॥ चिद० ॥ ४ ॥ अनुंधरीसु कुंथु कानमच्छ अवतरा । जल थल खचर कुनर नरक, असुर उपज मरा ॥ चिद० ॥ ५ ॥ अबके सुथल सुकुल सुसंग, बोध लहि खरा । दौलत त्रिरत्न साध लाध, पद अनुत्तरा ॥ चिद० ॥ ६ ॥

१०२

चित चितकें चिदेश[1] कब, अशेष[2] पर[3] वमूं[4] । दुखदा अपार विधि[5] दुचार[6]-की चमूं[7] दमूं ॥ चित चि० ॥ टेक ॥

तजि पुण्यपाप थाप आप, आपमें[8] रमूं[9] । कब राग-आग शर्म-बाग, दागिनी[10] शमूं[11] ॥ चित चितकें० ॥ १ ॥ दृग-ज्ञानभानतैं[12] मिथ्या, अज्ञानतम दमूं । कब सर्व जीव प्राणि-

---

१ आत्मा । २ सम्पूर्ण । ३ परपदार्थ । ४ वमन करदूं—छोडदूं । ५ कर्म । ६ दो चार अर्थात् आठ । ७ फौज । ८ आत्मामें । ९ रमण करूं । १० कल्याणरूप बागकी जलानेवाली । ११ शमन करूं, शांत करूं । १२ सम्यग् दर्शन और ज्ञानरूपी सूर्यसे ।

भूर्त[1], सत्त्वसौं छमू ॥ चित चितकैं० ॥ २ ॥ जलै[2] मल्ल-लिप्त-कलै[3] सुकल[4]-, सुवल्ल परिनमू । दलके त्रिशल्लमल्ल[5] कब, अटल्लपद[6] पमू ॥ चित चितकैं० ॥ ३ ॥ कब ध्याय अज अमरको फिर न, भवविपिन भमू । जिन पूर कौल[7] दौलको यह, हेतु हौं नमू ॥ चित चितकैं० ॥ ४ ॥

१०३

जिन छवि लखत यह बुधि भयी । जिन० ॥ टेक ॥
मैं न देह चिदंकमय तन, जड फरसरसमयी । जिन छवि० ॥ १ ॥ अशुभशुभफल कर्म दुखसुख, पृथकता सब गयी । रागदोषविभावचालित, ज्ञानता थिर थयी ॥ जिन छवि० ॥ ॥ २ ॥ परिगह न आकुलता दहन, विनशि शमता लयी । दौल पूर्वअलभ[8] आनँद, लह्यो भवथिति जयी ॥ जिन० ॥ ॥ ३ ॥

१०४

जिनवैन सुनत, मोरी भूल भगी । जिनवैन ० ॥ टेक ॥
कर्मस्वभाव भाव चेतनको, भिन्न पिछानन सुमति जगी । जिन० ॥ १ ॥ जिन अनुभूति सहज ज्ञायकता, सो चिर रुष तुष मैल-पगी । स्याद्वाद-धुनि-निर्मल-जलतैं, विमल

---

१ दशप्राणमयी । २ जड । ३ शरीर । ४ शुक्लध्यानके बलसे । ५ माया, मिथ्यात्व, निदानरूपी तीन शल्यरूपी पहलवानोंको । ६ मोक्षपद । ७ प्रतिज्ञा । ८ पूर्वमें जिसका लाभ नहीं हुआ ऐसा ।

भई समभाव लगी ॥ जिन० ॥ २ ॥ संशयमोहभरमता विघटी, प्रगटी आतमसोंज सगी । दौल अपूरव मंगल पायो, शिवसुख लेन होंस उमगी ॥ जिन० ॥ ३ ॥

१०५

जिनवानी जान सुजान रे । जिनवानी० ॥ टेक ॥ लाग रही चिरतैं विभावता, ताको कर अवसान रे । जिनवानी० ॥ १ ॥ द्रव्य क्षेत्र अरु काल भावकी, कथनीको पहिचान रे । जाहि पिछाने स्वपरभेद सब, जाने परत निदान रे । जिनवानी० ॥ २ ॥ पूरव जिन जानी तिनहीने, भानी संसृतिवान रे । अब जानै अरु जानैंगे जे, ते पावैं शिवथान रे ॥ जिनवानी० ॥ ३ ॥ कह 'तुपमाष' मुनी शिवभूती, पायो केवलज्ञान रे । यों लखि दौलत सतत करो भवि, चिद्वचनामृतपान रे ॥ जिनवानी० ॥ ४ ॥

१०६

जम आन अचानक दावैगा । जम आन० ॥ टेक ॥ छिनछिन कटत घटत थितिँ ज्यों जल, अंजुलिको झर जावैगा । जम आन० ॥ १ ॥ जन्म तालतरुतैं पर जिय-

१ निजपरणति । २ नाशकी । ३ भ्रमणकी आदत । ४ आयु ।
५ जन्मरूपी ताडवृक्षसे पड करके जीवरूपी फल बीचमें कबतक रहेगा ? वह तो नीचे पडेगा ही, अर्थात् मरेगा ही ।

फल, कौंलग वीच रहावैगा। क्यौं न विचार करै नर आखिर, मरन महीमें आवैगा ॥ जम आन० ॥ २ ॥ सोवत मृत जागत जीवत ही, श्वासा जो थिर थावैगा। जैसें कोऊ छिपै सदासौं, कवहूं अवशि पलावैगा[1] ॥ जम आन० ॥ ३ ॥ कहूं कवहूं कैसें हू कोऊ, अंतकेसे[2] न बचावैगा। सम्यकज्ञानपियूष[3] पियेसौं, दौल अमरपद पावैगा ॥ जम आन० ॥ ४ ॥

१०७

छांडत क्यौं नहिं रे, हे नर! रीति अयानी। बारबार सिख देत सुगुरु यह, तू दे आनाकानी ॥ छांड़त ॥ टेक ॥ विषय न तजत न भजत बोध व्रत, दुखसुखजाति न जानी। अर्म चहै न लहै शठ ज्यौं घृतहेत विलोवत पानी ॥ छांडत० ॥ १ ॥ तन धन सदन स्वजनजन तुझसौं, ये परजाय विरानी। इन परिनमनविनशउपजन सों, तैं दुख सुख-कर मानी ॥ छांडत० ॥ २ ॥ इस अज्ञानतैं चिरदुख पाये तिनकी अकथ कहानी। ताको तज दृग-ज्ञान-चरन भज, निजपरनति शिवदानी ॥ छांडत० ॥ ३ ॥ यह दुर्लभ नर-भव सुसंग लहि, तत्त्व-लखावन वानी। दौल न कर अब पर में ममता, धर समता सुखदानी ॥ छांडत० ॥ ४ ॥

---

१ भागेगा। २ जमराजसे। ३ सम्यग्ज्ञानरूपी अमृत।

१०८

राचि रह्यो परमाहिं तू अपनो रूप न जानै रे । राचि रह्यो० ।टेक। अविचल चिनमूरत विनमूरत, सुखी होत तस ठानै रे । राचि रह्यो० ॥ १ ॥ तन धन भ्रात तात सुत जननी, तू इनको निज जानै रे । ये पर इनहिं वियोगयोगमें यौं ही सुख दुख मानै रे ॥ राचि० ॥ २ ॥ चाह न पाये पाये तृष्णा, सेवत ज्ञान जघानै रे । विपतिखेत विधिबंधहेत पै, जान विषय रस खानै रे ॥ राचि० ॥ ३ ॥ नर भव जिनश्रुतश्रवण पाय अब, कर निज सुहित सयानै रे। दौलत आतम ज्ञान-सुधारस, पीवो सुगुरु बखानै रे ॥ राचि रह्यो० ॥ ४ ॥

१०९

तू काहेको करत रति तनमें, यह अहितमूल जिम कारासदन[1] । तू काहेको० ॥ टेक ॥ चरमपिहित[2] पलरुधिर[3]-लिप्त मल,-द्वार स्रवै छिनछिनमें । तू काहेको० ॥ १ ॥ आयु-निगड[4] फंसि विपति भरै सो, क्यों न चितारत मनमें । तू काहेको० ॥ २ ॥ सुचरन लाग त्याग अब याको, जो न भ्रमै भवधनमें । तू काहेको० ॥ ३ ॥ दौल देहसौं नेह देहको,-हेतु कह्यौ ग्रन्थनमें । तू काहेको० ॥ ४ ॥

---

१ कारागार जहलखाना । २ चमड़ेसे ढकी हुई । ३ मांस । ४ आयु रूपी बेड़ियोंमें ।

११०

थारा तौ वैनामें[1] सरधान घणो छै, म्हारे छवि निरखत हिय सरसावै । तुम[2]धुनिघन पर[3]चहन-दहनहर, वर समता-रस-झर वरसावै । थारा० ॥१॥ रूपनिहारत ही बुधि है सो निजपरचिह्न जुदे दरसावै । मैं चिंद[4] अकलंक अमल थिर, इन्द्रिय[5]सुखदुख जडफरसावै । थारा० ॥ २ ॥ ज्ञान विरागसुगुनतुम तिनकी, मापतिहित सुर[6]पति तरसावै । मुनि बडभाग लीन तिनमें नित, दौल ध[7]वल उपयोग रसावै ॥ थारा० ॥ ३ ॥

१११

त्रिभुवनआनन्दकारी जिन छवि, थारी नैननिहारी । त्रिभु० ॥ टेक ॥ ज्ञान अपूरव उदय भयो अब, या दिनकी बलिहारी। मो उर मोद बढो जु नाथ सो, कथा न जात उचारी । त्रिभु० ॥ १ ॥ सुन घनघोर मोरमुद ओर न, ज्यों निधि पाय भिखारी । जाहि लखत झट झरत मोह रज होय सो भवि अविकारी । त्रिभु० ॥ २ ॥ जाकी सुंदरता सु पुरन्दर[8]-शोभ लजावनहारी । निज अनुभूति सुधाछवि

---

१ वचनोंमें । २ आपका वाणीरूप मेघ । ३ पर पदार्थोंकी चाहरूपी अग्निको बुझानेवाला है । ४ चैतन्यस्वरूप । ५ इंद्रियजन्य सुखदुख जड स्पर्श करते हैं मेरा नहीं, मुझे सुखदुख नहीं होते । ६ इन्द्र । ७ विशुद्ध निर्मल । ८ इंद्रकी शोभा ।

पुलकित, मदन मदन अरिहारी । त्रिभु० ॥ ३ ॥ शूल दुकूल न बाला माला, मुनि मन मोद पसारी । अरुन न नैन न सैन भ्रमै न न, बंक न लंक सम्हारी । त्रिभु० ॥ ४ ॥ तातैं विधि विभाव क्रोधादि न, लखियत है जगतारी । पूजत पातकपुंज पलावत, ध्यावत शिवविस्तारी । त्रिभु० ॥ ५ ॥ कामधेनु सुरतरु चिंतामनि, इकभव सुखकरतारी । तुम छवि लखत मोदतैं जो सुर, सो तुमपद दातारी । त्रिभु० ॥ ६ ॥ महिमा कहत न लहत पारसुर, गुरुहूकी बुधि हारी । और कहै किम दौल चहै इम, देहु दशा तुमधारी ॥ त्रिभु० ॥ ७ ॥

११२

जिन छवि तेरी यह, धन जगतारन । जिन छवि० ॥ टेक ॥ मूल न फूल दुकूल त्रिशूल न, शमदमकारन भ्रमतम-वारन । जिन० ॥ १ ॥ जाकी प्रभुताकी महिमातैं सुरनधीशिता लागत सार न । अवलोकत भविथोक मोख मग, चरत वरत निजनिधि उरधारन । जिन० ॥ २ ॥ भजत भजत अघ तौ को अचरज ? समकित पावन भावनकारन । तासु सेव फल एव चहत नित, दौलत जाके सुगुन उचारन ॥ जिन छवि० ॥ ३ ॥

---

१ त्रिशूल । २ वस्त्र । ३ कमर । ४ जटा वा वल्कल । ५ फूलोंकी माला । ६ वस्त्र ७ इन्द्रपणा । ८ आपके पूजनेसे यदि पाप भागते हैं, तो इसमें क्या आश्चर्य है ?

११३

घन घन साधर्मीजन मिलनकी घरी, बरसत भ्रमताप-हरन ज्ञानघनझरी ॥ टेक ॥ जाके बिन पाये भवविपति अति भरी। निज परहित अहितकी कछू न सुधि परी॥ घन० ॥ १ ॥ जाके परभाव चित्त सुथिरता करी । संशय भ्रम मोहकी सु वासना टरी । घन० ॥२॥ मिथ्यागुरुदेवसेव टेव परिहरी । वीतरागदेव सुगुरुसेव उरधरी ॥ घन० ॥ ३ ॥ चारों अनुयोग सुहितदेश दिठपरी । शिवमगके लाहकी सु-चाह विस्तरी ॥ घन० ॥ ४ ॥ सम्यक् तरु धरनि येह करन-करिहरी । भवजलको तरनि समर-भुजग विषजरी ॥ घन० ॥ ५ ॥ पूरवभव या प्रसाद रमनि शिव वरी । सेवो अब दौल याहि बात यह खरी ॥ घन० ॥ ६ ॥

११४

धनि मुनि जिनकी लगी लौ शिवओरनै । धनि० ॥ टेक ॥ सम्यगदर्शनज्ञानचरननिधि, धरत हरत भ्रमचोरनै ॥ धनि० ॥ १ ॥ यथाजातमुद्राजुत सुन्दर, सदन विजन गिरिकोरनै । तृन कंचन अरि स्वजन गिनत सम, निंदन

१ हितोपदेश । २ लाभकी । ३ इन्द्रियरूपी हाथियोंको सिंहके समान । ४ जहाज । ५ कामदेवरूपी सर्पके लिये विनाशक जड़ी । ६ लगन । ७'नै' विभक्ति सब जगह 'को'के अर्थमें है । ८ नग्न दिगम्बर । ९ निर्जन ।

और निहोरनैं[1] । धनि० ॥ २ ॥ भवसुख चाह सकल तजि बल सजि, करत द्विविध तप घोरनैं ॥ परमविरागभाव पविं-[2]तैं नित, चूरत करम कठोरनैं ॥ धनि० ॥ ३ ॥ छीन शरीर न हीन चिदानन, मोहत मोहझकोरनैं । जग-तप-हर भवि[3] कुमुद निशाकर मोदन दौल चकोरनैं ॥ धनि० ॥ ४ ॥

११५

धनि मुनि जिन यह, भाव पिछाना । धनि० ॥ टेक ॥ तन-व्यय वांछित प्रापति मानी, पुण्य उदय दुख जाना । धनि० ॥ १ ॥ एकविहारी सकल ईश्वरता,[4] त्याग महोत्सव माना । सब सुखको परिहार सार सुख, जानि रागरुष भाना ॥ धनि० ॥ २ ॥ चित्स्वभावको चित्य प्रान निज, विमल-ज्ञानदृगसाना[5] । दौल कौन सुख जान लह्यो तिन, करो शांतिरसपाना ॥ धनि० ॥ ३ ॥

११६

धनि मुनि निज आतमहित कीना । भव असार तन अशुचि विषय विष, जान महाव्रत लीना ॥ धनि मुनि जिन आतमहित० ॥ टेक ॥ एकविहारी परीगह छारी परिसह सहत शरीना । पूरव तन तपसाधन मान न, लाज गनी पर-बीना ॥ धनि मुनि० ॥ १ ॥ शून्य सदन गिर गहन

---

१ प्रार्थना करनेको २ । वज्रसे । ३ भव्यरूपी कुमोदनीको चन्द्रमा । ४ ऐश्वर्य । ५ सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शनसहित ।

गुफामें, पद्मासन आसीना । परभावनतैं भिन्न आपपद, ध्यावत मोहविहीना ॥ धनि मुनि० ॥ २ ॥ स्वपरभेद जिनकी बुधि निजमें पागी वाहि लगीना, दौल तास पद वारिज[1]रजसे किसे[2] अघ[3] करे न छीना ॥ मुनि० ॥ ३ ॥

११७

निपट अयाना, तैं आपा न जाना, नाहक भरम भुलाना वे । निपट० ॥ टेक ॥ पीय अनादि मोहमद मोह्यो, परपदमें निज माना वे । निपट० ॥ १ ॥ चेतन चिह्न भिन्न जड़तासों, ज्ञानदरशरस-साना वे । तनमें छिप्यो लिप्यो न तदपि ज्यों, जलमें कजदल माना वे ॥ निपट० ॥ २ ॥ सकलभाव निज निज परनतिमय, कोई न होय बिराना वे । तू दुखिया परकृत्य मानि ज्यों, नभताडनै-श्रम ठाना वे ॥ निपट० ॥ ३ ॥ अजगनमें हरि भूल अपनपो, भयो दीन हैराना वे । दौल सुगुरुधुनि सुनि निजमें निज, पाय लह्यो सुखथाना वे । निपट० ॥ ४ ॥

११८

नितहितकारज करना भाई । निजहित कारज करना ॥ टेक ॥ जनममरनदुख पावत जातैं, सो विधिबंध कतरना

१ चरणरूपी कमलोंकी धूलिने । २ किसके । ३ पाप । ४ कमलपत्र । ५ आकाशको पीटने जैसा । ६ बकरोंमें । ७ सिंह ८ । कर्मबन्ध

निज० ॥ १ ॥ ज्ञानदरस अर राग फरस रस, निजपर-चिह्न भ्रमरना । संधिभेद बुधिछैनीतैं कर, निज गहि पर परिहरना ॥ निजहित० ॥ २ ॥ परिग्रही अपराधी शंकै, त्यागी अभय विचरना । त्यौं परचाह बंध दुखदायक, त्यागत सबसुख भरना ॥ निजहित० ॥ ३ ॥ जो भवभ्रमन न चाहे तो अब, सुगुरुसीख उर धरना । दौलत स्वरस सुधारस चाखो, ज्यौं विनसै भवमरना ॥ निजहित० ॥ ॥ ४ ॥

११९

मनवचतन करि शुद्ध भजो जिन, दाव भला पाया । अवसर मिलै नहिं ऐसा, यौं सतगुरु गाया ॥ मनवच० ॥ ॥ टेक ॥ वस्यो अनादिनिगोद निकसि फिर, थावर देह धरी । काल असंख्य अकाज गमायो, नेक न समुझि परी ॥ मनवच० ॥ १ ॥ चिंतामनि दुर्लभ लहिये ज्यौं, त्रसपरजाय लही । लट पिपील अलि आदि जन्ममें, लह्यो न ज्ञान कहीं ॥ मनवच० ॥ २ ॥ पंचेंद्रिय पशु भयो कष्टतैं, तहां न बोध लह्यो । स्वपरविवेकरहित बिन संयम, निशदिन भार वह्यो ॥ मनवच० ॥ ३ ॥ चौपथ चलत रतन लहिये ज्यौं, मनुपदेह पाई । सुकुल जैनवृप सतसंगति यह, अतिदु-

---

२ बुद्धिरूपी छैनीसे निज और परका संधिभेद करना । ३ परिग्रहका धारी तथा परकी वस्तु ग्रहण करनेवाला चोर । ४ नौका ।

र्लभ भाई ॥ मनवच॰ ॥ ४ ॥ यौं दुर्लभ नरदेह कुधी जे, विषयनसंग खोवैं। ते नर मूढ अजान सुधारस, पाय पांव धोवैं ॥ मनवच॰ ॥ ५ ॥ दुर्लभ नरभव पाय सुधी जे, जैन धर्म सेवैं। दौलत ते अनंत अविनाशी। सुख शिवका वेवैं ॥ मनवचतन करि॰ ॥ ६ ॥

१२०

मोहिड़ा रे जिय! हितकारी न सीख सम्हारै। भववन भ्रमत दुखी लखि याको, सुगुरुदयालु उचारै ॥ मोहि॰ ॥ ॥ टेक ॥ विषय भुजंगम संग न छोडत, जो अनन्तभव मारै। ज्ञान विराग पियूष न पीवत, जो भवव्याधि विडारै ॥ मोहि॰ ॥ १ ॥ जाके संग दुरैं अपने गुन, शिवपद अन्तर पारै। ता तनको अपनाय आप चिन,-मूरतको न निहारै ॥ मोहि॰ ॥ २ ॥ सुत दारा धन काज साज अघ, आपन काज बिगारै। करत आपको अहित आपकर, ले कृपान जैल दारै ॥ मोहि॰ ॥ ३ ॥ सही निगोद नरककी वेदन, वे दिन नाहि चितारै। दौल गई सो गई अबहू नर, धर दृग-चरन सम्हारै ॥ मोहिडा॰ ॥ ४ ॥

१२१

मेरे कब है वा दिनकी सुघरी। मेरे॰ ॥ टेक ॥ तन विन वसन असनविन वनमें, निवसों नासादृष्टिधरी। मेरे॰॥

१ मूर्ख। २ जाने अनुभव करें। ३ तलवार लेकर जलको काटता है।

पुण्यपापपरसौं कब विरचौं, परचौं निजनिधि चिरविसरी । तज उपाधि सजि सहजसमाधी, सहौं घाम हिमभेघझरी[1] ॥ मेरे० ॥ २ ॥ कब थिरजोग धरौं ऐसो मोहि, उपल[2] जान मृग खाज हरी । ध्यान-कमान तान अनुभव-शर[3] छेदौं किहि दिन मोह अरी ॥ मेरे० ॥ ३ ॥ कब तृनकंचन एक गनौं अरु, मनिजडितालय[4] शैलदरी[5] । दौलत सत गुरुचरन सेव जो, पुरवो आश यहै हमरी ॥ मेरे० ॥ ४ ॥

१२२

लाल कैसे जावोगे, असरनसरन कृपाल लाल० ॥ ॥ टेक ॥ इक दिन सरस वसंतसमयमें, केशवकी सब नारी प्रभुमदच्छनारूप खडी है, कहत नेमिपर वारी । लाल० ॥ ॥ १॥ कुंकुम लै सुख मलत रुकमनी रंग छिरकत गांधारी। सतभामा प्रभुओर जोर कर छोरत है पिचकारी ॥ लाल० ॥ २ ॥ ब्याह कबूल करो तो छूटौ, इतनी अरज हमारी । ओंकार[6] कहकर प्रभु मुलके, छांड दिये जगतारी ॥ लाल० ॥ ३ ॥ पुलकितवदन मदनपितु-भामिनि[7], निज निज सदन सिधारी । दौलत जादववंशव्योम शशि, जयौ जगत हितकारी ॥ लाल० ॥ ४ ॥

---

१ धूप-शीत-वर्षा । २ पत्थर । ३ अनुभवरूपी बाण । ४ रत्नजडित महल । ५ पर्वतकी कंदरा । ६ स्वीकार । ७ मगनप्रति—ऐसा भी पाठ है । मदनपितुभामिनि-मदन अर्थात् प्रद्युम्न कामदेवके पिता श्रीकृष्णकी स्त्री